समय-प्रमुख विद्यानन्द मुनि
सम्पादन बलभद्र जैन

आवरण (मूल सज्जा) : कु मधु जैन, बड़ौत
आवरण (सस्कार) : टाइम्स ऑफ इण्डिया

आवरण (रग-संयोजन)
नो कर्म (स्वर्णाभ)
द्रव्य कर्म (नीलाभ)
भाव कर्म (अरुणाभ)
शुद्ध स्व-रूप

प्रथम आवृत्ति, मई १९७८
विद्यार्थी सस्करण

मूल्य स्वाध्याय

प्रकाशन
मन्त्री,
श्री कुन्दकुन्द भारती,
७-ए, राजपुर रोड,
दिल्ली—११०००६

प्राप्ति-स्थान
मन्त्री, श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति
४८, सीतलामाता बाजार,
इन्दौर—४५२००२, मध्यप्रदेश

समय-सार आचार्य कुन्दकुन्द
Samayasara Acharya Kundkund
Religion 1978

मुद्रण
नई दुनिया प्रेस, इन्दौर

मुन्नुडि*

आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समय

मगल भगवदो वीरो, मगल गोदमो गणी।
मगल कोण्डकुदाइ, जेण्ह् धम्मोत्थु मगल[1] ॥

आचार्य उच्चकोटि का असामान्य साधक होता है। उमे तीर्थंकर के सदृश माना गया है, क्योकि तीर्थंकर के अभाव मे वह धर्म-तीर्थ का उपवृंहण करता है।

प्रात स्मरणीय आचार्य कुन्दकुन्द आत्मरसानुभवी महर्षि थे । जैन आचार्य-परम्परा मे उनका स्थान शीर्पस्थ है । अनेक आचार्यो ने उनका नाम-स्मरण अत्यन्त आदर के साथ किया है। प्रत्येक शुभ कार्य मे जिन चार मगलो का नाम-स्मरण किया जाता है, उनमे आचार्य का नाम भी मम्मिलित है। उत्तरकालीन प्रायश सभी आचार्यो ने अपने आपको कुन्दकुन्दाचार्य के 'कुन्दकुन्दान्वय'[2] वताने हुए गौरव का अनुभव किया है। श्रमण सस्कृति के समुन्नयन मे उनका योगदान अविस्मरणीय है।

वे दीर्घ तपस्वी, अनेक ऋद्धियो के धारक और अतिशय ज्ञान-सम्पन्न श्रमण थे। उनका प्रामाणिक एव विस्तृत जीवन-चरित्र इतिवृत्त उपलब्ध नही है, किन्तु प्रशस्तियो, पट्टावलियो, शिलालेखो तथा दर्शनसार आदि ग्रन्थो के आधार पर कुछ तथ्य सचय किये जा सकते हैं। इनके अनुसार उनका जन्म-स्थान आन्ध्र प्रान्त में कुन्दकुन्दपुरम्[3] मे शार्वरी[4] नाम सवत्सर माघ शुक्ला ५ ईसा पूर्व १०८ में हुआ था। उन्होने ११ वर्ष की अल्पायु में ही श्रमण मुनि-दीक्षा ली तथा ३३ वर्ष तक मुनिपद पर रह कर ज्ञान और

---

१ तीर्थंकर वर्धमान-महावीर मगल स्वरूप हैं। गणधर गौतम ऋषि (दिव्यध्वनि के सन्देश-वाहक तथा द्वादशाङ्ग आगम के रचयिता) मगलात्मक हैं । कुन्दकुन्दादि आचार्य-परम्परा (विद्यावश) मगलमय हैं। एतावता विश्व के सम्पूर्ण भव्यात्माओ को जैन धर्म मगल कारक है ।

२ वश—'वश दो प्रकार का चलता था—विद्या और योनि सम्बन्ध से (विद्यायोनिसम्बन्धेभ्योवुञ् ४-३-७७, अनो विद्यायोनि सवन्धेम्य ६-३-२३)। विद्यावश गुरु-शिष्य-परम्परा के रूप मे चलता, जो योनि (पुरुवश, इक्ष्वाकुवश) सम्बन्ध के समान ही वास्तविक माना जाता था।'

३ शिलालेख के अनुसार कोणुकुन्दे, प्रचलित नाम कोडकुन्दी, गुण्टूर तहसील, आन्ध्र प्रदेश।

४ ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् प वाहुवली।

* मुन्नुडि—कन्नड, पुरोवाक् (प्रवचन)

चारित्र की सतत साधना की। ४४ वर्ष की आयु में (ई पू. ६४) चतुर्विध (श्रमण, श्रमणा और श्रावक, श्राविका) सघ ने उन्हे आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित किया। वे ५१ वर्ष १० मास १५ दिन इस पद पर विराजमान रहे। उन्होंने ९५ वर्ष १० मास १५ दिन की दीर्घायु[1] पायी और ई पू १२ में[2] समाधि-मरण द्वारा स्वर्गारोहण किया।

विन्ध्यगिरि के एक शिलालेख (श्रवणबेलगुल) के अनुसार उन्हें चारण ऋद्धि प्राप्त थी जिसके द्वारा वे भूमितल से चार अगुल ऊपर आकाश मे गमन[3] करते थे। उनके सम्बन्ध मे यह भी अनुश्रुति प्रचलित है कि वे विदेह क्षेत्र मे वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर भगवान के समवसरण मे गये थे और उनकी दिव्यध्वनि का श्रवण[4] किया था। कई ग्रन्थो मे उनके पाँच नामो–'पद्मनन्दि[5], कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य' का भी उल्लेख मिलता है।[6] अभिधानराजेन्द्रकोश[7] मे कुन्दकुन्दाचार्य का परिचय देते हुए विक्रम सवत् ४९ मे उनकी विद्यमानता को स्वीकार किया है तथा उनके इन पाँचो नामो का भी उल्लेख किया है, केवल 'पद्मनन्दि' के स्थान पर 'मदननन्दि' नाम दिया है। 'वारस-अणुपेक्खा'[8] मे उन्होंने

---

१ दिगम्बर पट्टावलियो के आधार पर प्रो हार्नले द्वारा आचार्य श्री के जीवन का निर्णीत काल, *Indian Antiquary*, *Vol XX, XXI*, डॉ ए एन उपाध्ये, *Historical Introduction to Panchastikayasar*, p 5, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

२ डॉ गजवली पाण्डे, विक्रमादित्य, पृ १६१।

३ विन्ध्यगिरि शिलालेख।

४ दर्शन सार।

विदेह क्षेत्र में आचार्य कुन्दकुन्द के जाने की कथा विश्वसनीय नही जान पडती। आचार्य नेमिचन्द्र कृत गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा २३६ और प टोडरमल जी कृत उनकी टीका मे बताया है कि किसी क्षेत्र का कोई प्रमत्तसयत मुनि औदारिक शरीर से दूसरे क्षेत्र में नहीं जा सकता। वह जिनेन्द्र अथवा जिनालय की वन्दनार्थ एव असयम दूर करने के लिए आहारक शरीर से जा सकता है। कुन्दकुन्द को आहारक शरीर प्राप्त था, इस प्रकार का कोई उल्लेख या प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

५ जयउ सिरि पउमणदी जेण महातच्च पाहुडो सेला।
बुद्धि सिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्वा लोयस्स ॥ —जयसेनाचार्य, तात्पर्यवृत्ति

६ षट्प्राभृत की श्रुतसागरी टीका।

७ कुन्दकुन्द पु–स्वनामख्यातो दिगम्बराचार्य, भद्रबाहुगुप्तिगुप्तोमाघनन्दिजिनचन्द्र कुन्द-कुन्दाचार्य इतितत्पट्टावल्या शिष्यपरम्परा अयमाचार्यो विक्रम स ४९ वर्षे वर्तमान आसीत्। अस्यैव वक्रग्रीव एलाचार्य गृद्धपिच्छ मदननन्दि दिव्यपरणि नामानि, अभिधानराजेन्द्र-कोष ३-५७७

८ इदिणिच्छयववहार ज भणिद कुदकुद मुणिणाहे।
जो भावदि सुद्धमणो सो पावदि परमणिव्वाण ॥९१॥

अपना नाम 'कुन्दकुन्द' ही दिया है। उन्होंने 'बोधपाहुड'[1] मे अपने आपको 'भद्रवाहु' का शिष्य वताया है तथा अन्यत्र उन्होंने 'भद्रवाहु' को अपना गमक गुरु[2] माना है। इससे लगता है कि वे भद्रवाहु के साक्षात् शिष्य न होकर परम्परा-शिष्य थे।

उत्तरवर्त्ती अनेक आचार्यों ने कुन्दकुन्द का अनुकरण किया है। यहाँ उनमे से केवल उमास्वामी, शिवार्य, पूज्यपाद, सिद्धसेन और यतिवृषभाचार्य का नामोल्लेख करना पर्याप्त होगा। इससे यह स्वीकार करने मे सहायता मिल सकेगी कि कुन्दकुन्द निश्चय ही इन आचार्यों से पूर्ववर्त्ती थे।

आचार्य कुन्दकुन्द उपजीवि साहित्य-परम्परा लगभग दो सहस्र वर्षो तक किस प्रकार सुरक्षित और उपवृंहित[3] हुई है यह प्रत्यक्ष साक्षी है—

---

१ ' सीसेण य भद्दवाहुस्स ॥६१॥

२ सुदणाणि भद्दवाहू गमयगुरु भयवदो जयओ ॥६२॥

— 'सुदकेवलीभणिद ॥१॥ समयसार'

३

	कुन्दकुन्द—	उमास्वामी—(ई की दूसरी शती के मध्य)
(क)	दव्व मल्लक्खणिय उप्पादव्वयधुवत्तमजुत्त ।	मद्द्रव्यलक्षणम् ॥—तत्त्वार्थसूत्र ५—२९
	गुणपज्जयासय वा ज त भण्णति सव्वण्हू ॥	उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तसत् ॥—,, ५—३०
	—पचास्तिकाय १—१०	गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥— ,, ५—३८
	देवा चउण्णिकाया ॥—पचास्तिकाय १—१४	देवाश्चतुर्णिकाया ॥— ,, ४—१
	धम्मत्थि कायाभावे ॥—नियमसार, १८५	धर्मास्तिकायाभावात् ॥— ,, १०—८
	कुन्दकुन्द—	शिवार्य—(ई की तीसरी शती)
(ख)	ज अण्णाणी कम्म खेवदि भवसयसहस्सकोडीहिं ।	ज अण्णाणी कम्म खेवदि भवमयसहस्सकोडीहिं।
	त णाणी तिहि गुत्तो खवेदि उस्साममेत्तेण ॥	त णाणी तिहिं गुत्तो खेवदि अतोमुहुत्तेण ॥
	—प्रवचनसार ३—३८	—भगवती आराधना २—१०
(ग)	कुन्दकुन्द—	सिद्धसेन दिवाकर (ई की ५वी शती)
	'जो चेव कुणदि मो चेव वेदगो जम्म एम मिद्धतो।'	दव्वट्ठियस्स जो चेव कुणइ सो चेववेयइ णियमा।
	—समयसार १०—४०—३४७	अण्णो करेइ अण्णो परिभुजइ पज्जवणस्स ॥
	अण्णो करेदि अण्णो परिभुजदि जस्स एस मिद्धतो ।	—सन्मति सूत्र १—५२
	—समयमार १०—४१—३४८	
	कुन्दकुन्द —	पूज्यपाद — (ई की ५वी शती)
(घ)	मुहेण भाविद णाण दुहे जादे विणस्सदि ।	अदु ख भावित ज्ञान क्षीयते दु खसन्निधौ ।
	तम्हा जहा वल जोइ अप्पा दुक्खेहिं भावए ॥	तम्माद् यथा वल दु खैरात्मान भावयेन् मुनि ।
	—मोक्षपाहुड, ६२	—समाधिशतक
	कुन्दकुन्द —	यतिवृषभाचार्य—(ई की ५-६वी शती के वीच)
(ङ)	जाव ण वेदि विसेमतर आदामवाण दोण्ह पि ।	जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्ह पि ।
	अण्णाणी ताव दु मो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥	अण्णाणी ताव दु सो विसयादि वट्टदे जीवो ॥
	—समयसार, ६९	— तिलोयपण्णत्ति ९।६३

प्राकृत भाषाओ के क्रमिक विकास एव परिवर्तनो के अध्ययन मे हमें कुन्दकुन्द के ग्रन्थो मे बडी सहायता प्राप्त होती है, इससे हम उनके काल का निर्णय भी कर सकते है। प्राकृत भाषा-शास्त्र के विद्वान्[1] प्राकृत भाषा के क्रमिक विकास का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि त् और थ् मे परिवर्तन होते-होते प्रथम तो वे द् और ध् हुए, फिर क्रमश द् का लोप हो गया और ध् के स्थान मे ह् का प्रयोग होने लगा। ऐतिहासिक दृष्टि मे भाषा-शास्त्रियो ने इस विकास-काल को ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी स्थिर किया है। 'समयसार' मे हमे रथ शब्द के स्थान मे रध[2] और रह[3] दोनो ही परिवर्तित रूपो का प्रयोग मिलता है।

हाथी गुफा शिलालेख का प्रारम्भ 'नमो सव सिधान' से हुआ है और कुन्दकुन्द ने भी समयसार का प्रारम्भ 'वदित्तु सव्व सिद्धे' से किया है अर्थात् दोनो ने ही समस्त सिद्धो को नमस्कार किया है। सभवत उस काल मे एकेश्वरवाद का जोर था। मगल नमस्कार करते समय यह भी दृष्टि मे रहा हो तो कोई आश्चर्य नही।

समय-सार की महत्ता

समयसार आचार्य कुन्दकुन्द के आत्मवैभव का प्रतीक है। उन्होने पहले शुद्ध आत्मा को साक्षात् किया फिर 'समयसार' की वाग्-धार मे उसे स्फूर्त भी किया। शायद इसी कारण वह सहज है और स्वाभाविक भी। समयसार कोरा शास्त्र नही है, उसमे आत्मानुभति का दिव्य प्रकाश है, किन्तु उसे देखने के लिए अपनी आत्मा को ऊर्ध्वमुखी करना ही होगा। आचार्य कुन्दकुन्द स्वसमय के मन्त्र-दृष्टा थे, केवल मन्त्र-प्रस्तोता नही।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने इस ग्रन्थ का नाम 'समय पाहुड' रखा था। ग्रन्थ की प्रथम गाथा मे 'वोच्छामि समयपाहुडमिण' कहा है और अन्तिम गाथा मे 'जो समयपाहुडमिण' दिया है। इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ का मूल नाम 'समयपाहुड' है। यह नाम सोद्देश्य है। तीर्थंकर महावीर की वाणी द्वादशाग मे गुम्फित है। इनमे वारहवे अग का नाम दृष्टिवाद है। उसमे

१ ईसा के बाद जिन व्यञ्जनो मे विकार आया, वे थे त् और थ्, जो स्वर मध्यम होने पर पहले तो सघोष (अर्थात् द् और ध्) हुए और तब इस द् का लोप तथा ध् का ह् मे परिवर्तन हुआ। त और थ् का सघोष मे परिवर्तन पूर्वी एव पूवमध्य की विभाषाओ मे ईसा पूर्व प्रथम शती मे प्रतिष्ठित हो चुका था।

—तुलनात्मक पालि-प्राकृत-अपभ्रश व्याकरण, पृ १०, भूमिका डॉ सुकुमार सेन

२ समयसार गाथा ९८

३ समयसार गाथा २३६

चौदह पूर्व है। इनमे पाचवें पूर्व का नाम ज्ञानप्रवाद है। उसमे बारह वस्तु अधिकार हैं। उनमे दसवे वस्तु अधिकार मे 'समयपाहुड' है।

आचार्य कुन्दकुन्द को दसवें वस्तु अधिकार के 'समयपाहुड' का ज्ञान था। इसके प्रमाण-स्वरूप सहारनपुर की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति का उद्धरण प्रस्तुत किया जा सकता है—"चौदहपूर्व मे ज्ञानप्रवाद नामा पचम पूर्व है तामे बारह वस्तु अधिकार हैं, तिनमे एक-एक वस्तु मे बीस-बीस प्राभृत अधिकार हैं, तिनमे दशवां वस्तु मे समय नामा प्राभृत है, ताका ज्ञान कुदकुदाचार्यनिकूं था, तातैं समयप्राभृत ऐसा नाम धरिकैं कहने की प्रतिज्ञा करिए है अथवा समय नाम आत्मा का भी है, ताका जो सार सो समयसार ऐसा जानना।"

उन्होंने उसका स्वात्मा मे अनुभव किया था, उस अनुभव को ही उन्होंने शब्दबद्ध किया था, इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत 'समयपाहुड' वही है, जिसकी देशना भगवान महावीर ने की थी और जिसकी प्ररूपणा गौतम गणधर और श्रुतकेवलियो ने की थी। वही आचार्य-परम्परा मे सुरक्षित रूप मे आचार्य कुन्दकुन्द को प्राप्त हुआ था। इसलिए कुन्दकुन्द ने 'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिद' कहा है। इसकी टीका करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने 'अर्हत्प्रवचनावयवस्य' कहा है अर्थात् इसे तीर्थंकर भगवान के परमागम का अवयव (भाग) बताया है। आचार्य पूज्यपाद[1] इस तथा ऐसे अन्य ग्रन्थो को अर्थरूप मे तीर्थंकर की वाणी मानकर प्रमाणभूत मानते हैं।

इस ग्रन्थ मे तीन बार 'समयसार'[2] शब्द का प्रयोग मिलता है। समय[3] का अर्थ आत्मा है और सार का अर्थ है शुद्ध स्वरूप अर्थात् आत्मा का शुद्ध स्वरूप। जिन तीन स्थलो पर समयसार शब्द का प्रयोग किया गया है, उनमे दो स्थलो पर उसे नय पक्षातिक्रान्त और तीसरे स्थल पर अभेद-रत्नत्रयस्वरूप कहा है। यही कार्य समयसार बताया है। तीसरे स्थल पर निश्चय कारण समयसार का निरूपण है। इस ग्रन्थ मे अभेदरत्नत्रयरूप शुद्धात्मस्वरूप का अर्थात् समयसार का वर्णन किया गया है, इसलिए इस ग्रन्थ का अपर नाम समयसार हो गया।

इस ग्रन्थ की दो टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं—आचार्य अमृतचन्द्र की आत्म-ख्याति तथा आचार्य जयसेन की तात्पर्यवृत्ति। आत्मख्याति के अनुसार इस ग्रन्थ की गाथा सख्या ४१५ है, जबकि तात्पर्यवृत्ति के अनुसार यह सख्या

---

१ 'तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति क्षीरार्णवजल घटगृहीतमिव'—सर्वार्थसिद्धि १-२०-२११

२ गाथा स ३-३४, ३-७६, १०-१०६

३ 'समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान गच्छतीति समय'। समयसार गाथा ३, आत्मख्याति टीका

४३७ है। इस प्रकार दोनो टीकाओ मे २२ गाथाओ का अन्तर है। दोनो टीकाओ की कुछ गाथाओ मे क्रम-विपर्यय भी मिलता है। तात्पर्यवृत्ति की अधिक गाथाओ मे कई गाथाएँ अप्रासगिक है, पुनरुक्त हैं और अन्य ग्रन्थो की हैं। दोनो टीकाओ मे कही-कही पाठ-भेद और अर्थ-भेद भी दृष्टिगोचर होता है।

ग्रन्थराज 'समयसार' आध्यात्म का अनुपम ग्रन्थ है। इसमे निश्चय-नय की मुख्यता से आत्मा के शुद्धस्वरूप का वर्णन किया गया है। कई स्थलो पर व्यवहार और निश्चय दोनो ही नय-पक्षो[1] का मत प्रस्तुत किया गया है। दोनो की हेयोपादेयता पर विचार करते हुए यह सकेत दिया गया है कि जिन्होंने शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति कर ली है, उनके लिए निश्चय-नय है तथा जिन्हें शुद्धात्मभाव की प्राप्ति नही हुई, वल्कि जो साधक दशा मे स्थित हैं, उनके लिए व्यवहार-नय प्रयोजनवान है अर्थात् दोनो नयो की प्रयोजनवत्ता अपेक्षा-भेद से है, सर्वथा ऐकान्तिक नही है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार को दो रूपो मे प्रस्तुत किया है, जिन्हें टीकाकारो के अनुसार कारण समयसार और कार्य समयसार की सज्ञा दी गई है। जहाँ तक आत्मा के शुद्धस्वरूप के वर्णन का सम्वन्ध है, वह सव कारण समयसार है, क्योकि निश्चयनय भी एक विकल्प है और कोई विकल्प सर्वथा सत्य नही है। कार्य समयसार तो स्वानुभव की दशा है, वह दशा अनिर्वचनीय होती है, इसीलिए कुन्दकुन्द उसे नय पक्ष से रहित वनाते हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ मे अनेकान्त दृष्टि से आत्म-स्वरूप का वर्णन है।

यह कहा जा सकता है कि आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन करने वाले समयसार की समता अन्य कोई ग्रन्थ नही कर सकता। इस दृष्टि से इसे ग्रन्थराज, आत्मधर्म का प्रतिनिधि-ग्रन्थ और जैनधर्म का एकमात्र प्राण-ग्रन्थ कहा जाए तो अत्युक्ति नही होगी। इस ग्रन्थ की सवसे वडी विशेषता यह है कि आत्मधर्म जैसे गूढ विषय को इसमे अत्यन्त सरल और सुवोध रीति से प्रतिपादित किया गया हैं। दुरूह विषय को भी दृष्टान्तों[2] के माध्यम मे सहज वनाया है। इससे कठिन विषय सुवोध हो गये हैं। वस्तुत मूलग्रन्थ अत्यन्त सरल और रोचक है। विद्वत्तापूर्ण टीकाओ के कारण यह कठिन लगता हैं। समाज मे इसके मूलपाठ के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है।

समयसार ग्रन्थ का सवसे वडा माहात्म्य यह है कि इसे पढकर जो हृदयगम कर लेता है, वही इसका प्रेमी और भक्त वन जाता है। उसके भाव वदल जाते है

१ गाथा क्रमाक–१–१६, १–२८, १–२९, २–८, २–१०, २–१८, २–२१, २–२२, २–२९, ३–१५, ३–१६, ३–२९, ३–३०, ३–३८, ३–३९, ३–४०, ३–७३, ८–३६, ८–४०, १०–१७, १०–४६, १०–५३, १०–५८, १०–१०७

२ समयसार की ७६ गाथाओ मे ३७ दृष्टान्तो द्वारा विषय को समझाया गया है।
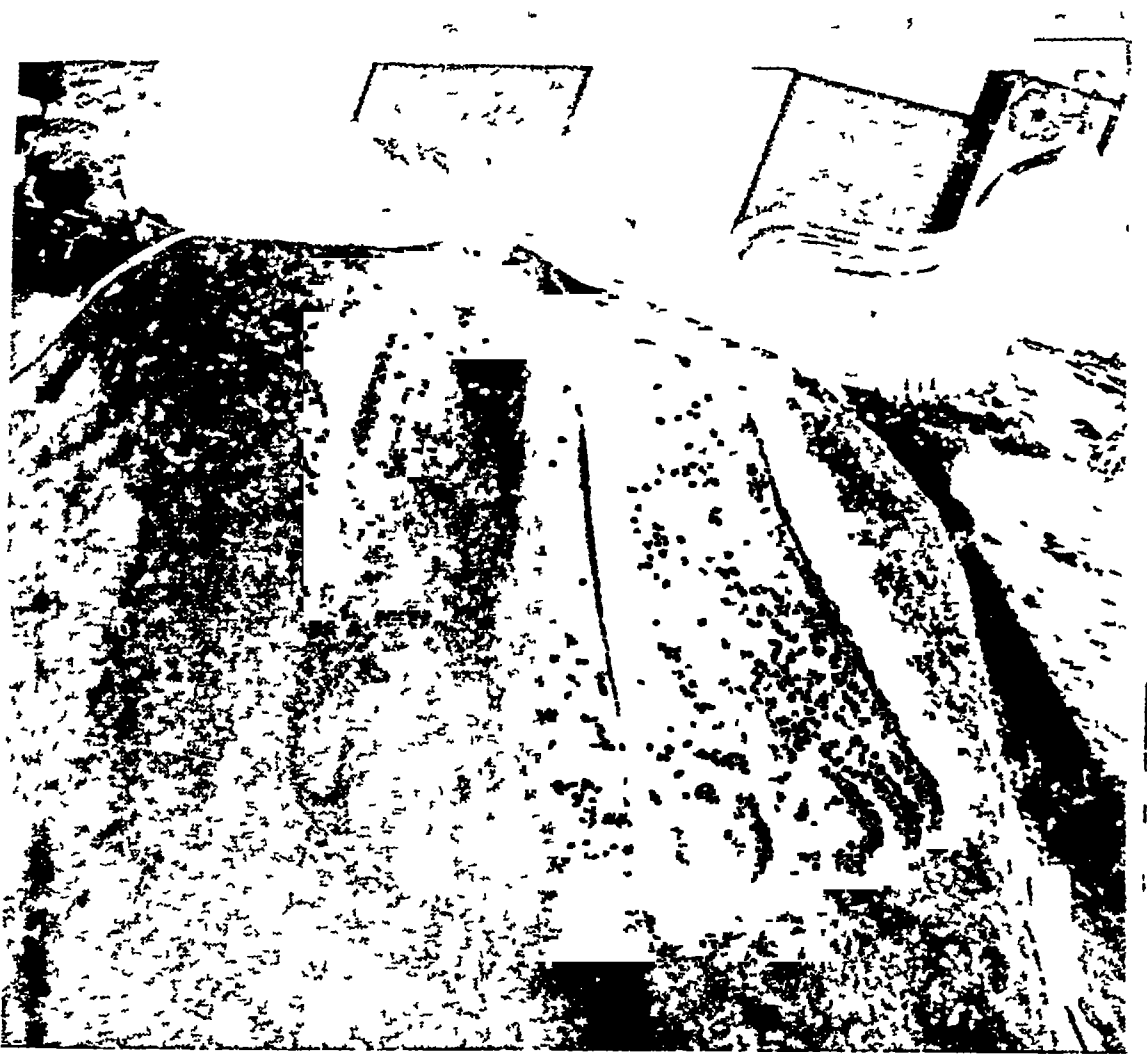
आचार्य कुन्दकुन्द के चरण-चिह्न, पोन्नूरमलै (तमिलनाडु)

सौजन्य श्री कन्हैयालाल जैन मद्रास

और रुचियाँ मुड जाती हैं। वह आत्म-कल्याण की ओर उन्मुख हो जाता है। समयसार का स्वाध्याय करने से पहले द्रव्यसग्रह, गोम्मटसार, पचास्तिकाय और पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय जैसे कुछ ग्रन्थो का अध्ययन कर लेना आवश्यक है। उससे समयसार सही रूप मे हृदयगम हो जाता है।

यह अध्यात्म ग्रन्थ है, किन्तु उत्तम कोटि का दर्शनशास्त्र भी[1], एक ऐसा दर्शनशास्त्र, जिस पर मानव-समाज सहज ही गौरव का अनुभव कर सकता है। सम्पूर्ण चेतन-अचेतन जगत को समझकर सूक्ष्म चर्चा करने वाला यह ग्रन्थ अपने मे अनुपम है। उसकी कोई उपमा नही।

भाषा-विचार

प्राकृत भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन भाषा है। विद्वानो ने प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की है—'प्रकृत्या स्वभावेन सिद्ध प्राकृतम्' अथवा 'प्रकृतीणा साधारण-जनानामिद प्राकृतम्' अर्थात् प्रकृति स्वभाव से सिद्ध भाषा प्राकृत है अथवा सर्वसाधारण मनुष्य जिस भाषा को बोलते है, उसे प्राकृत कहते है। देश-भेद के कारण प्राकृत भाषा के कई भेद हो गये, यथा—मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, पाली, पैशाची। डॉ पिशल[2] आदि विद्वानो ने[3] जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी रूप भी स्वीकार किये है। अर्धमागधी जैन आगमो की भाषा है।

प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ सरयूप्रसाद अग्रवाल[3] के मतानुसार दिगम्बर सम्प्रदाय की कुछ रचनाओ मे शौरसेनी की अधिकाश विशेषताएँ उपलब्ध होती है, इसलिए उसे जैन शौरसेनी माना गया है। कुन्दकुन्द की सभी रचनाएँ जैन शौरसेनी मे रची गई है। पिशल के मतानुसार जैन शौरसेनी आशिक रूप मे जैन महाराष्ट्री से अधिक पुरानी है। इन दोनो भाषाओ के ग्रन्थ छन्दो मे है।

इस प्रकार प्राकृत भाषा के विद्वानो ने समयसार की भाषा को जैन शौरसेनी प्राकृत स्वीकार किया है। जैन शौरसेनी मे महाराष्ट्री और अर्धमागधी के अनेक

---

१ २३ गाथाओ मे परमतो का परिहार किया है।

२ *Comparative Grammar of the Prakrit Languages*

३ 'शौरसेनी प्राकृत की स्वतन्त्र रचनाएँ तो उपलब्ध नही होती, परन्तु जैन शौरसेनी मे दिगम्बर-सम्प्रदाय के ग्रन्थ उपलब्ध होते है। वैसे तो अर्धमागधी ही जैन ग्रन्थो की मुख्य भाषा है, परन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय की कुछ रचनाओ मे शौरसेनी की अधिकाश विशेषताएँ उपलब्ध होती है, इसलिए उसे जैन शौरसेनी का रूप माना गया है। प्रथम शताब्दी मे कुन्दकुन्दाचार्य रचित 'पवयणसार' जैन शौरसेनी की प्रारम्भिक प्रसिद्ध रचना है। कुन्दकुन्दाचार्य की प्राय सभी रचनाएँ इसी भाषा मे है।' —प्राकृत विमर्श, पृ ३२

४ आर पिशल, पृ २६

शब्द मिलते हैं, किन्तु इन दोनो मे उसमे कुछ बातो मे भिन्नता है, जैसे—'सुयकेवलीभणिय' इसका जैन शौरसेनी रूप 'सुदकेवलीभणिद' होगा। इस प्राकृत मे क्रियापद मे संस्कृत के क्त्वा प्रत्यय के स्थान मे दूण प्रत्यय लगता है, जैसे—पढिदूण, जाणिदूण, णादूण। अनेक शब्द जैन शौरसेनी के साँचे मे ढलकर विशिष्ट रूप ग्रहण कर लेते हैं—जैसी अर्धमागधी का 'इक्क' जैन शौरसेनी मे 'एक्क' बन जाता है। इसी प्रकार समयसार मे प्रयुक्त जैन-शौरसेनी के व्याकरण-सम्मत शब्दरूप, धातुरूप अथवा अव्यय विशेष ध्यान देने योग्य हैं, यथा—वुक्कें ज्ज, घे त्तव्व, हवे ज्ज, गिण्हदि, किह, अहक, मुयदि, वज्झे, तिण्णि, जाणे, करे ज्ज, भणे ज्ज, पों ग्गल आदि। समयसार की मुद्रित और लिखित प्रतियो मे अधिकाश भूलें भाषा-ज्ञान की कमी के कारण हुई है। हमे यह नही भूलना चाहिये कि कुन्दकुन्द केवल सिद्धान्त और आध्यात्म के ही मर्मज्ञ विद्वान् थे, अपितु वे भाषाशास्त्र के भी अधिकारी और प्रवर्त्तक विद्वान् थे। उन्होंने अपनी प्रौढ रचनाओ द्वारा प्राकृत को नये आयाम दिये, उन्होंने उसका सस्कार किया, उसे सँवारा और नया रूप दिया, इसीलिए वे जैन शौरसेनी के आद्य कवि और रचनाकार माने जाते हैं।

समय-सार में छन्द-विचार

जैन शौरसेनी के क्षेत्र मे कुन्दकुन्द अविस्मरणीय थे। उन्हे 'कठोपनिषद्' मे वर्णित क्रान्तदृष्टा[1] कवि कहा जा सकता है। शब्दशास्त्र और छन्दशास्त्र पर उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उन्होंने अपनी सभी रचनाओ मे पद्य का आश्रय लिया। उन्होंने पद्य मे शब्दशास्त्र और छन्दशास्त्र के नियमो का पूरा ध्यान रखा, इसलिए उनकी रचनाओं मे इन दोनो शास्त्रो की दृष्टि से कोई त्रुटि दृष्टिगोचर नही होती। कुछ विद्वानो की यह धारणा रही है कि कुन्दकुन्द इन शास्त्रो के किसी बन्धन मे नही बँधे थे, किन्तु कुन्दकुन्द की प्राञ्जल-परिष्कृत भाषा, छन्द-शुद्धि, अलकारो का प्रयोग आदि को देखकर विश्वास करना पडता है कि उन्होंने व्याकरण, छन्द आदि का पूर्ण ध्यान रखा है।

समयसार पर छन्दशास्त्र की दृष्टि से विचार करने पर हमे अनेक रोचक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

१ छन्दोभङ्ग न कारयेत्—छन्दशास्त्र के आचार्यों ने बताया है कि जैसे स्वर्णतुला स्वर्ण के न्यूनाधिक भार को सहन नही करती, इसी प्रकार श्रवण-तुला छन्दभग से भ्रष्ट हुए छन्द को सहन नही करती।[2]

---

१ 'जो आत्मस्मरण करता हुआ भूत, भविष्य और वर्तमान की परिस्थितियो का ज्ञाता होता है, वह कवि क्रान्तदृष्टा कवि कहलाता है'—कठोपनिषद्

२ जमण सहइ कणअतुला तिलतुलिअ अद्धअद्धेण।
तम ण सहइ सवणतुला अवछद छदभगेण॥ —प्राकृत पैंगलम्, पृ १३

जो मूर्ख, पण्डितो के समक्ष लक्षण-विहीन काव्य को पढता है, वह अपने हाथ मे रही हुई तलवार से अपना ही मस्तक काटता[1] है। समयसार मे कही छन्द-भग नही मिलता।

२ **जगण-विचार** जिस गाथा मे एक जगण (ISI) होता है, वह कुलीन (श्लाघ्य) कहलाती है। दो जगणो के होने पर वह स्वय गृहीत सुख-ग्राह्य होती है। नायक जगण के होने पर वह रण्डा होती है तथा अनेक नायको वाली वेश्या[2] होती है।

इस दृष्टि से समयसार की गाथाओ पर विचार किया तो ज्ञात हुआ कि इसमे एक जगण वाली गाथाओ की सख्या १९६, दो जगण वाली गाथाओ की सख्या १०९ है।

३ **छन्द-विचार** समयसार की गाथा क्रमाक २५१, २५२ २९८, २७९, ३१२, ३१३ ३१४ और ३१५ को छोडकर शेष ४०७ गाथाओ मे गाहा[3] छन्द का प्रयोग किया है। गाथा क्रमाक २५१ और २५२ मे उग्गाहा[4] छन्द है। शेष गाथाओ के छन्द अभी अनिर्णीत है। सम्भव है, प्रतिलिपिकारो के प्रमाद से इनमे कुछ शब्द न्यूनाधिक हो गये है अथवा छद्मस्थ होने के नाते मै निर्णय नही कर सका हूँ।

४ **गाथा पढने की विधि** [5]गाथा का प्रथम चरण हस-जैसी मन्थर गति से पढना चाहिये, द्वितीय चरण सिह–विक्रम के समान अर्थात् तेज गति से, तृतीय चरण गज की-सी गति से तथा चतुर्थ चरण सर्प-जैसी गति से पढना चाहिये।

प्राय पाठक गाथाओ को लय और स्वर के साथ नही पढते। कुछ लोग तो जल्दी-जल्दी पढते है। उसमे उन्हे न भाषा का और न भावो का रसास्वाद हो पाता है।

५ **रस-प्रयोग** समयसार मे सर्वत्र माधुर्य के दर्शन होते है। कुन्दकुन्द ने समयसार मे सर्वत शान्तरस का प्रयोग किया है। शान्तरस का स्थायीभाव निर्वेद या शम है, जो समयसार के विषय के अनुरूप है। शान्तरस सम्यग्ज्ञान से उत्पन्न होता है। उसका नायक निस्पृह होता है। राग-द्वेष के नितान्त त्याग से सम्यग्ज्ञान की

---

१ अबुह बुहाण मज्झे कव्व जो पढइ लक्खण विहूण।
भूअग्ग लग्गखग्गहिँ सीस खुडिअ ण जाणेइ॥ —प्राकृत पैंगलम्, पृ १४

२ सव्वे जे कुलवन्ती वे णाअक्केहि होइ सगहिणी।
णायकहीणा रडा वेसा बहुणाअरा होइ॥ —प्राकृत पैंगलम्, गाहा ६३

३ जिसके प्रथम और तृतीय चरण मे १२–१२ मात्राएँ हो, द्वितीय चरण मे १८ और चतुर्थ चरण मे १५ मात्राएँ हो, वह गाहा छन्द कहलाता है।

४ जिसके पूर्वार्ध और उत्तरार्द्ध मे ३०–३० मात्राएँ हो, वह उग्गाहा छन्द कहलाता है।

५ पढम वी हसपअ बीए सहिस्स विक्कम जाआ।
तीए गअवर लुलिअ अहिवर लुलिअ चउत्थए गाहा॥ —प्राकृत पैंगलम, ६२

उत्पत्ति[1] होती है। अत 'भववीजाङकुरजनना' राग-द्वेष का परित्याग ही शान्त रस है। शान्तरस की इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि समयसार मे शान्तरस प्रवाहित है, क्योकि समयसार का विषय अध्यात्म है। गाथा–१५ मे बताया हुआ है कि जो भव्यात्मा आत्मा को शान्त भावस्थित आत्मा मे अनुभव करता है, वही आत्मा सम्पूर्ण जिनशासन को जानता है।

६ अलकार-प्रयोग समयसार मे अलकारो का प्रयोग स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। दृष्टान्त अलकार का प्रयोग तो अनेक स्थलो पर हुआ है। गाथा क्र ३०४ मे हमे अनुप्रास अलकार के दर्शन होते हैं।

पाठ-शोधन की उपलब्धियाँ

समयसार जैन-धर्म का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। केवल जैनधर्म का ही क्या, समूचे अध्यात्म वाङमय का वह एक पीयूष ग्रन्थ है, ऐसा ग्रन्थ, जो खोजने पर भी अन्यत्र न मिलेगा।

यद्यपि समयसार की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियो के मूलपाठो मे सामान्य ढग से एकरूपता है, किन्तु कही-कही उनकी गाथाओ की सख्या मे भेद है, भाषा मे भेद है, पाठो में भेद है। कभी किसी काल मे किसी सस्कृतानुरागी व्यक्ति ने समयसार की मूल प्राकृत गाथाओं का सस्कृत छायानुवाद कर दिया। इसके पश्चात् तो इस ग्रन्थ के सभी सम्पादको और अनुवादको ने अपनी प्रति मे उसी छायानुवाद का अनुकरण किया और मूल गाथा के साथ उसे भी अवश्य दिया। इस गतानुगतिकता का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि मूल गाथाओ मे पाठ-भेद होने पर भी सस्कृत छाया प्राय सभी प्रतियो मे समान रही। प्रायश सभी सम्पादको ने तो सस्कृत-प्रेम के अत्युत्साह मे गाथा का अन्वयार्थ करने के स्थान मे सस्कृत छाया का अन्वयार्थ अपने ग्रन्थ मे दिया है। समयसार और प्राकृत भाषा के साथ यह कैसी उपेक्षा है–

उपलब्ध सभी मुद्रित प्रतियो का हमने भाषा-शास्त्र, प्राकृत-व्याकरण और छन्द-शास्त्र की दृष्टि से सूक्ष्म अवलोकन किया है। हमे ऐसा लगा कि उन प्रतियो मे परस्पर तो अन्तर है ही, भाषा-शास्त्र आदि की दृष्टि से भी त्रुटियो की बहुलता है। अधिकाश कमियाँ जैन शौरसेनी भाषा के रूप को न समझने का परिणाम हैं। प्राकृत व्याकरण और छन्दशास्त्र के नियमो का ध्यान न रखने के कारण भी अनेक भूलें हुई जान पडती हैं।

ग्रन्थ का सपादन करते समय उपर्युक्त भूलो के अतिरिक्त हमे अनेक पाठो मे असगतियाँ भी प्रतीत हुई। ऐसे पाठो का सशोधन करना जोखिम का काम था, अत हमने अनेक स्थानो मे ताडपत्रीय और हस्तलिखित प्राचीन प्रतियो का सग्रह

---

१ सम्यग्ज्ञान समुत्थान शान्तो निस्पृहनायक ।
रागद्वेष परित्यागात्सम्यग्ज्ञानस्य चाद्भव ॥ –वाग्भट्टालकार, ५–३२

किया। सगृहीत सभी भाषाओ की मुद्रित प्रतियो की सख्या २२ और ताडपत्रीय या हस्तलिखित प्रतियो की सख्या लगभग ३५ थी। ताडपत्रीय अथवा हस्तलिखित प्रतियो मे कुछ प्रतियाँ तो पर्याप्त प्राचीन थी। ये प्रतियाँ श्रवणवेलगोल, मूडवद्री, दिल्ली, आगरा, अजमेर, वडौत से मँगवाई जाती थी। इनमें मूडवद्री की ताडपत्रीय प्रति (कन्नड लिपि) शक सवत् १४६५ की, अजमेर और खजूर मसजिद दिल्ली की प्रतियाँ वि म १६०८ की, खजूर मसजिद की अन्य प्रति स १६१९ की, मोती कटरा, आगरा की प्रति स १७५२ की, नया मन्दिर दिल्ली की प्रति स १६६० की थी। मूडवद्री की ताडपत्रीय प्रति मे वालचन्द मुनि की कन्नड टीका है तथा अन्य प्रतियो मे आत्म-ख्याति अथवा तात्पर्य-वृत्ति टीका है। मूडवद्री और श्रवण-वेलगोल की ताडपत्रीय प्रतियो की लिपि कन्नड है। दोनो स्थानो के पूज्य चारु-कीर्ति भट्टारको ने अपने विद्वानो से नागरी लिपि मे उनकी प्रतिलिपि कराने की अनुकम्पा की, अत मैं उनका आभारी हूँ।

इन नाना प्रतियो के तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य यही था कि समयसार के जैन शौरसेनी के मूलपाठ को सुरक्षित रक्खा जा सके। हमारा विश्वास है कि मूल प्राकृत पाठो मे जो भाव-गाम्भीर्य है, उसे दृष्टि मे रखते हुए इन मूलपाठो को सुरक्षित रखने की वडी आवश्यकता है। इन मूलपाठो के स्वाध्याय से आचार्य कुन्दकुन्द के भावो को समझने मे सहायता मिलेगी।

पाठ-सशोधन अथवा सपादन की हमारी शैली इस प्रकार रही है—हमने विभिन्न प्रतियो के पाठ-भेद सग्रह किये। प्रसग और ग्रन्थकार के अभिप्रेत के अनुसार उचित पाठ को प्राथमिकता दी। प्राथमिकता देते हुए अमृतचन्द्र के मन्तव्य को अवश्य ध्यान मे रखा। जहाँ अमृतचन्द्र मौन हैं, वहाँ जयसेन के मन्तव्य को पाठ के औचित्य के अनुसार स्वीकार किया। गाथा मे छन्दोभग न हो, भाषा मे विकृति न आने पाये एव शब्दो के रूप शब्द-शास्त्र की मर्यादा मे रहें, हमने यथाशक्ति ऐसा प्रयत्न किया है। इसके लिए हमने प्राकृत-भाषा का कोश, इतिहास व्याकरण और छन्दशास्त्र के अध्ययन मे पर्याप्त समय दिया। हमने अपनी ओर से इसमे कुछ भी मिलाने का प्रयत्न नही किया। आर्ष और आचार्य-परम्परा से आये हुए प्रसिद्ध अर्थ (अजहत्स्वार्थ) के अनुसार ही हमने अन्वय और अर्थ किया है। यदि असावधानी, प्रमाद या अज्ञानवश कोई त्रुटि रह गई हो तो सहृदय विद्वान् मुझे क्षमा करें। यदि वे त्रुटियो की ओर मेरा ध्यान आकर्षित कर सकें तो मैं हृदय से उनका आभारी रहूँगा तथा आगामी सस्करण मे त्रुटियो का सशोधन कर सकूँगा।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस ग्रन्थ के सपादन की प्रेरणा मुझे पूज्य उपाध्याय श्री विद्यानन्दजी महाराज से प्राप्त हुई। इसके सपादन, सशोधन मे पूज्यश्री की प्रतिभा, सूझबूझ, शोध-खोज

और साहाय्य ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। एक शब्द मे कहूँ तो यह सब पूज्य महाराज के ही अनुग्रह और आशीर्वाद का फल है। प्रारम्भ से ही मेरे प्रति आपका वात्सल्य और स्नेह रहा है। उनके प्रति मेरी हार्दिक और निश्छल विनय-भक्ति है। उन्हें पुन पुन मेरा नमोऽस्तु है।

हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रतियो की कन्नड लिपि की नागरी लिपि मे रूपान्तर कराकर श्रवणबेलगोल और मूडबद्री के भट्टारक पूज्य चारुकीर्ति पण्डिताचार्य महाराज ने जो अनुग्रहपूर्ण कृपा की, उससे मुझे बडी सहायता मिली। मैं इन पूज्य भट्टारको का अनुगृहीत हूँ।

दिल्ली के विभिन्न शास्त्र-भण्डारो से समयसार की अनेक प्रतियाँ लाकर लाला पन्नालालजी अग्रवाल दिल्लीवालो ने मुझे दीं। विद्वानो के प्रति लालाजी का स्नेह, श्रुतभक्ति और गुरुसेवा के भाव प्रशसा के योग्य है। इसी प्रकार स्वनामधन्य सेठ भागचन्दजी सोनी ने एक हस्तलिखित प्रति भेजने की कृपा की। मोती कटरा, आगरा के शास्त्र-भण्डार के मत्री ने मेरी प्रार्थना पर हस्तलिखित प्रति देकर मुझे उपकृत किया। मैं इन सभी सहृदय सज्जनो का आभारी हूँ।

मुझे पाठ-सशोधन करते समय व्याकरण और छन्दशास्त्र की दृष्टि से श्री महावीरजी के प मूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री का अमूल्य सहयोग मिला। उनकी इस कृपा के लिए मैं अनुगृहीत हूँ।

इनके अतिरिक्त जिन विद्वानो के ग्रन्थो से मुझे जो भी सहायता मिली, उनके प्रति मैं कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूँ।

डॉ नेमीचन्द जैन (इन्दौर) ने प्रूफ देखने तथा छपाई मे सम्बद्ध व्यवस्था करने मे अत्यन्त दत्तचित्ततापूर्वक कार्य किया है, उनके प्रति मैं भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

'अक्खर पयत्थहीण, मत्ताहीणं च ज मए भणिय।
तं खमउ णाणदेवय, मज्झ वि दुक्खक्खयं दितु ॥'

अक्षय-तृतीया
१० मई, १९७८

विनम्र—
बलभद्र जैन

विसयाणुक्कमणिका

सार-सहित विषयानुक्रमणिका

पढमो जीवाधियारो   १-३८-३८   १-३२

गाथा १–

पूर्वार्द्ध मे इष्टदेव-सिद्ध भगवान का मगल-स्मरण किया है तथा उत्तरार्द्ध मे 'समयपाहुड' ग्रन्थ के कथन की प्रतिज्ञा की है।

गाथा २–१२, पीठिका–

स्वभाव मे स्थित जीव स्वसमय है और पुद्गल कर्मप्रदेश मे स्थित जीव परसमय है। परमार्थभूत शुद्धात्मतत्त्व मे गुणभेद नही है, किन्तु गुण-भेद निरूपक व्यवहार के विना परमार्थ का कथन नही हो सकता। साधक-दशा मे व्यवहारनय और सिद्धदशा मे निश्चय नय प्रयोजनवान हैं।

गाथा १३–३७ जीवाधिकार–

निश्चय नय के विषयभूत आत्मा को जानना ही सम्यग्ज्ञान है। इसी से निश्चय और व्यवहार स्तुति का अन्तर ज्ञात होता है।

गाथा ३८, उपसहार–

ज्ञानी की अन्तर्भावना होती है कि मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शनमय हूँ, अरूपी हूँ, परमाणु-मात्र भी परद्रव्य मेरा नही है।

दुदियो जीवाजीवाधियारो   २-३०-६८   ३३-५०

गाथा ३९–४८, अजीवभाव–

देह-रागादि औपाधिक भाव है, निश्चयनय से वे जीव नही हैं।

गाथा ४९–६०, शुद्ध जीव का स्वरूप–

निश्चय नय से जीव मे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, सस्थान, लिंग, राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय आदि नही हैं। ये सब पुद्गल के परिणाम हैं, किन्तु व्यवहार से जीव के कहे गये हैं।

गाथा ६१–६८, मुक्त जीव–

शुद्ध जीव मे वर्णादि भाव, जीवसमास, गुणस्थान, इन्द्रियाँ, बादर और सूक्ष्म आदि का तादात्म्य नही है। ये भाव ससारदशा के हैं।

तिदियो कत्तिकम्माधियारो ३-७६-१४४ ५१-१०६

गाथा ६९–७४, ज्ञानी और अज्ञानी जीव–

जव तक जीव शुद्धात्मा और क्रोधादि आस्रवो का स्वरूप नही जानता, तव तक वह अज्ञानी कहलाता है। जव वह स्वसवेदन के द्वारा क्रोधादि-आस्रवो से भिन्न शुद्धात्मस्वरूप को जान लेता है, तव ज्ञानी कहलाता है। अज्ञानी के कर्मवन्ध होता है, ज्ञानी के कर्मवन्ध नही होता। स्वसवेदन और रागादि आस्रवो की निवृत्ति एक ही काल मे होती है।

गाथा ७५–८४, निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था–

जीव और पुद्गल कर्म अपने भावो से परिणमन करते है, परद्रव्यरूप परिणमन नही करते, किन्तु उनका परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। निश्चय नय से आत्मा अपने को ही करता और भोगता है और व्यवहार नय मे अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मो को करता और भोगता है।

गाथा ८५–१०८, द्विक्रियावादित्व का निराकरण–

यदि जीव अपने परिणामो के समान पुद्गल कर्मो को भी करता और भोगता है तो इससे दो द्रव्यो की क्रियाओ का अभेद हो जाएगा। यह जैन-मत के विरुद्ध है। जीव अपने भावो का कर्त्ता है, किन्तु अज्ञान से अपने को परभाव का कर्त्ता मानता है।

गाथा १०९–१४१, कर्तृत्व के सम्वन्ध मे व्यवहार और निश्चय–

व्यवहार नय से अज्ञान के कारण जीव पुद्गल कर्म का कर्त्ता है, किन्तु निश्चय नय मे कर्त्ता नही है।

गाथा १४२–१४४, समय-सार–

निश्चय और व्यवहार नय है और समय-सार सभी नयो से रहित है।

चउत्थो पुण्णपावाधियारो ४-१९-१६३ १०७-१२१

गाथा १४५–१५०, पुण्य और पाप की हेयता–

पुण्य और पाप दोनो ही वन्धकारक और ससार के कारण है। यदि पुण्य स्वर्ण की वेडी है तो पाप लोहे की जन्जीर है, इसलिए दोनो ही त्यागने योग्य है। राग कर्म-वन्ध का कारण है और विराग मुक्ति का।

गाथा १५१–१५४, ज्ञान ही परमार्थ है–

ज्ञान परमार्थ है, क्योकि वही शुद्ध आत्म-स्वरूप है। परमार्थ मे स्थित मुनि निर्वाण प्राप्त करते हैं। जो परमार्थ से वाह्य है, उनका व्रत, चारित्र, समिति और तप आदि सव कुछ अज्ञान-मूलक है और इसीलिए ससार का कारण है।

गाथा १५५–१६३, मोक्ष-मार्ग–

मोक्ष-मार्ग निश्चय और व्यवहार के भेद से दो प्रकार का होता है। कर्मो का क्षय निश्चयमार्ग के अवलम्बन से होता है। उसमे सम्यक्त्व, चारित्र और ज्ञान मुख्य हैं। मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय ससार के कारण है।

पचमो आसवाधियारो ५-१७-१८० १२२-१३३

गाथा १६४–१६९, सम्यग्दृष्टि को वन्ध नहीं होता–

मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग, जीव तथा पुद्गल के विकार है। पुद्गल के विकार जीव के ज्ञानावरणादि के कारण हैं और जीव के राग-द्वेष आदि परिणाम पुद्गल कर्मों के आने के कारण हैं। रागादि परिणाम न होने से सम्यग्दृष्टि अवन्धक कहा गया है। वह सत्ता मे पडे हुए कर्मों को जानता है। उदय मे आने पर वे कर्म झड जाते हैं।

गाथा १७०–१७२, वन्ध के कारण–

ज्ञानी मे वुद्धि-पूर्वक 'अज्ञानमय राग-द्वेष' का अभाव है, अत वह निरास्रव है। उसमे क्षयोपशम ज्ञान के कारण दर्शन, ज्ञान और चारित्र जघन्य भाव से परिणमन करते है, अत उसको कर्म का वन्ध तो होता है, किन्तु रागादि के अभाव की अपेक्षा उसे निरास्रव कहा गया है।

गाथा १७३–१८०, द्रव्यास्रव वन्ध का कारण नहीं है–

पूर्व मे, अज्ञान अवस्था मे वाँधे हुए कर्म, सत्ता मे रहते हुए, भोगने योग्य नही होते। वे उदय मे आते ही भोग्य हो जाते है। उस समय जीव के राग-द्वेष आदि विकारी भाव होते है, उनके अनुसार कर्म-वन्ध होता है। केवल द्रव्य कर्म आस्रव का कारण नही है। शुद्ध नय से छूटने पर ही ज्ञानी कर्म-वन्ध करता है। वह वन्ध ज्ञानावरणादि रूप हो जाता है।

छट्ठमो सवराधियारो ६-१२-१९२ १३४-१३९

गाथा १८१–१८३, भेदविज्ञान–

उपयोग चैतन्य का परिणाम है। वह ज्ञान-स्वरूप है। भावकर्म, द्रव्य कर्म और नौकर्म पुद्गल के परिणाम हैं। वे जड-रूप है। उनमे प्रदेश-भेद है। उपयोग मे 'कर्म-नौकर्म' अथवा 'कर्म-नौकर्म' मे उपयोग नही है। ज्ञान मे क्रोधादि नहीं हैं और क्रोधादि मे ज्ञान नही है। इस भेदविज्ञान के होने पर शुद्धात्मा अन्य किसी प्रकार का भाव नहीं करता।

गाथा १८४–१८९, शुद्धात्मोपलब्धि–

भेदविज्ञान से ज्ञानी अपने शुद्धात्मस्वरूप को नही छोडता और अज्ञानी राग को ही आत्मा मानता है। ज्ञानी शुद्धात्मा के ज्ञान से शुद्धात्मा को

प्राप्त कर लेता है और अज्ञानी अशुद्धात्मा के ज्ञान से अशुद्धात्मा को प्राप्त करता है।

गाथा १९०–१९२, सवर का क्रम–

अध्यवसान ज्ञानी के राग-द्वेष के निमित्त नही होते। उसके कारण आस्रव नही होता, अत क्रमश कर्म, नोकर्म और ससार का निरोध होता है।

सत्तमो णिज्जराधियारो ७-४४-२३६ १४०-१७७

गाथा १९३–२००, ज्ञान वैराग्य का सामर्थ्य–

कर्म का उदय होने पर सुख-दु ख होते हैं। ज्ञानी उसमे राग-द्वेष नही करता, अत वह कर्म तो झड ही जाता है, उसके नवीन कर्मो का बन्ध नही होता। जैसे–वैद्य विष का उपयोग करने पर भी मरण को प्राप्त नही होता। वह अपने आपको ज्ञायक स्वभाव मानता है।

गाथा २०१–२०२, राग सम्यग्दर्शन का प्रतिबन्धक है–

जिसके स्वल्प भी रागादिभाव हैं, वह शास्त्रो का ज्ञाता भले ही हो, किन्तु वह आत्मा को नही जानता, न अनात्मा को जानता है, अत वह सम्यग्दृष्टि नही है।

गाथा २०३–२०६, ज्ञानपद का माहात्म्य–

शुद्ध नय का विषयभूत ज्ञान ही निर्वाण और सौख्य को देता है।

गाथा २०७–२१६, ज्ञानी अपरिग्रही है–

ज्ञानी परद्रव्य की इच्छा नही करता, वह तो उसका ज्ञाता-मात्र है, अत वह अपरिग्रही है। वह वर्त्तमान काल मे प्राप्त भोगो के प्रति विराग-सम्पन्न है और भविष्य के भोगो के प्रति निष्काम है।

गाथा २१७–२२७, ज्ञानी को राग नहीं है–

ससार के भोगो और देह के सुख-दु खादि मे ज्ञानी के राग नही होता, अत उसे कर्म-पक नही लगता। अज्ञानी को सब द्रव्यो मे राग है, अत वह कर्म-पक मे लिप्त होता है। भोगो को भोगते हुए भी ज्ञानी अज्ञानी नही होता। भोगोपभोग उसके ज्ञान को अज्ञान नही कर सकते, वह स्वय अज्ञान-रूप परिणमन करके ज्ञान को अज्ञान-रूप कर सकता है।

गाथा २२८–२३६, अष्टाग सम्यग्दर्शन–

सम्यग्दृष्टि अष्टाग सम्यग्दर्शन मे युक्त होता है। ये आठ अग निश्चय सम्यग्दर्शन के होते है।

गाथा २३७–२४६, वन्ध का निमित्त–

मिथ्यादृष्टि के कर्म का वन्ध होता है। उसके कर्मवन्ध मे मन-वचन-काय की क्रियाएँ अथवा सचित्त-अचित्त द्रव्यो का घात कारण नही है। उसके उपयोग मे जो रागादि भाव हैं, वे ही वन्ध का कारण हैं। सम्यग्दृष्टि के उपयोग मे रागादिभाव नही होते, अत उसके कर्मो का वन्ध नही होता।

गाथा २४७–२७१, मिथ्या अध्यवसान वन्ध का कारण है–

मैं पर को मारता हूँ, जिलाता हूँ, सुख-दु ख देता हूँ, दूसरे मुझे मारते, जिलाते और सुख-दु ख देते है, यह मिथ्या अध्यवसान ही वन्ध का कारण है। सुख-दु ख, जीवन-मरण सव कर्माधीन है। जीव को मारो या न मारो, जीव के मारने का जो अध्यवसान है, उससे कर्म का वन्ध होता है। कर्म का वन्ध वस्तु मे नही, अध्यवसान मे होता है। अध्यवसान मे ही पर मे आत्म-वुद्धि होती है।

गाथा २७२–२७७, व्यवहार और निश्चय का दृष्टिभेद–

निश्चय नय आत्माश्रित है, व्यवहार नय पराश्रित है। पराश्रित अध्यव-सान ही वन्ध का कारण है। इसी कारण निश्चय नय की दृष्टि से व्यवहार नय का निषेध किया गया है। पराश्रित दृष्टि का श्रद्धा-हीन शास्त्र-ज्ञान, भोग-निमित्तक धर्म मे निष्ठा और व्रतादिरूप चारित्र को कर्म-वन्ध का कारण माना है। निश्चय नय मे तो आत्मा ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान और सवर है।

गाथा २७८–२८२, ज्ञानी और अज्ञानी का भेद–

ज्ञानी आत्मा शुद्ध है। पर द्रव्य के सम्वन्ध मे रागादि होते हैं। उससे वह रागादि रूप परिणमन करता है। वस्तु स्वभाव को जान कर ज्ञानी स्वय रागादिरूप परिणमन नही करता अत वह उन भावो का कर्त्ता नही है। अज्ञानी उन भावो का कर्त्ता है, अत कर्मों का वन्ध करता है।

गाथा २८३–२८७, ज्ञानी पुद्गल द्रव्य का कर्त्ता नहीं है–

प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान के दो भेद हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्य प्रतिक्रमण निमित्त है और भाव प्रतिक्रमण नैमित्तिक है। यही वात प्रत्याख्यान की है। अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भाव रूप से दो प्रकार का है। ये दोनो ही पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं। ज्ञानी इन्हे जानता है, करता नही। इसी प्रकार अध कर्म, औद्देशिक भोजन आदि भी पुद्गलमय है। ज्ञानी इनका कर्त्ता नही है।

णवमो मोक्खाधियारो ९-२०-३०७ २११-२२५

गाथा २८८–२९३, मोक्ष के लिए पुरुषार्थ–

कर्मों को जानने का अर्थ कर्मों मे मुक्त होना नही है। कर्मों का स्वरूप, उनकी स्थिति, उदय, कारण और जीव के साथ उनका बन्ध, यह सब जानकारी एक बात है और उनमे मुक्ति अन्य बात है। मुक्त होने के लिए उसे कर्मबन्ध के कारणभूत राग-द्वेष का नाश करना होगा।

गाथा २९४–३००, भेदविज्ञान ही मोक्ष का उपाय है–

जीव और कर्मबन्ध दोनो के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। भेदविज्ञान रूपी छैनी से दोनो को विभक्त करके बन्ध को काटना चाहिए, तभी शुद्धात्मा प्राप्त हो सकती है। सतत ध्यान मे लाना चाहिए कि मैं शुद्ध आत्मा हूँ। ज्ञाता-दृष्टा हूँ, इसके अतिरिक्त सब भाव पर हैं, वे मेरे नही है, अत त्याज्य है।

गाथा ३०१–३०५, परद्रव्य का ग्रहण करना अपराध है–

लोक मे भी पर के द्रव्य को ग्रहण करना चोरी कहलाती है। उसको अपराध माना जाता है और उसके लिए अवश्यम्भावी दण्ड निर्धारित है। परद्रव्य को ग्रहण करने पर आत्मा भी अपराधी कहा जाता है। जो व्यक्ति परद्रव्य को अपना नही मानता और शुद्ध आत्मा की सिद्धि करता है, वह नि शकित रहता है और निरपराधी होता है।

गाथा ३०६, ३०७, निश्चय नय से प्रतिक्रमणादि विषकुम्भ हैं–

व्यवहार नय से कहा जाता है कि द्रव्य या भाव प्रतिक्रमणादि करने से आत्मा शुद्ध होता है, किन्तु निश्चय नय मे प्रतिक्रमणादि पुद्गलाधीन हैं। वे बन्ध के कारण हैं। शुद्धात्म तत्त्व तो प्रतिक्रमणादि-रहित है। इस दृष्टि से द्रव्य या भाव प्रतिक्रमणादि विषकुम्भ हैं और अप्रतिक्रमणादि अमृत-तुल्य हैं।

दहमो सव्वविसुद्धणाणाधियारो १०-१०८-४१५ २२६-२९८

गाथा ३०८–३२०, मोक्ष पदार्थ की चूलिका–

जीव अपने निश्चित परिणामो मे उत्पन्न होता है और उन परिणामो के साथ उसका तादात्म्य है। अपने परिणामो को छोड कर वह अन्य मे नही जाता। जीव का अजीव के साथ कार्य-कारण भाव नही है, किन्तु अनादि-कालीन अज्ञान से यह जीव प्रकृति को अपना मानता रहा है। फलत दोनो का निमित्त-नैमित्तिक भाव से बन्ध है और उससे ससार है। अपनत्व छोडे बिना ससार से मुक्ति नही है। अज्ञानी और ज्ञानी मे यह अन्तर है कि अज्ञानी कर्म के उदय को अपना जान कर भोगता है और ज्ञानी कर्म के

उदय को अपना स्वभाव नहीं मानता, अत उसे भोगता नही, केवल जानता है। ज्ञानी पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष, कर्म और कर्मफल सब को जानता है, किन्तु उनका कर्त्ता नही है।

गाथा ३२१–३४४, जीव का कर्तृत्व–

कुछ एकान्तवादी जीव को षट्काय आदि का कर्त्ता मानते हैं कुछ अन्य एकान्तवादी जीव को अकर्त्ता मानते है और सुख-दु:ख, जीवन-मरण आदि का कर्त्ता कर्म को मानते हैं। अनेकान्त दृष्टि मे जीव कर्त्ता है और अकर्त्ता भी। अज्ञान दशा मे वह मिथ्यात्वादि भावो का कर्त्ता है और भेदविज्ञान होने पर आत्मा को ही आत्मा के रूप मे जानता है, अत. वह मिथ्यात्वादि भावो का अकर्त्ता है।

गाथा ३४५–३६५, जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व–

कुछ एकान्तवादी मानते हैं कि जो करता है, वह नही भोगता और जो भोगता है, वह नहीं करता। आर्हत् मत अनेकान्त दृष्टि मे जीव को 'द्रव्य पर्यायात्मक' मानता है। द्रव्य दृष्टि मे जीव नित्य है और पर्याय दृष्टि से क्षणभगुर है, अर्थात् द्रव्य दृष्टि मे देखा जाए तो जो करता है वही भोगता है और पर्याय दृष्टि मे जो करता है वह नही भोगता है। जीव पुण्य-पाप-रूप पुद्गल कर्म को करता है, मन-वचन-काय आदि पुद्गल कारणो द्वारा करता है, उनके सुख-दु:ख रूप फल को भोगता है। यह निमित्त-नैमित्तिक व्यवस्था-मात्र है। जीव पर द्रव्यो मे तन्मय नही होता। निश्चय नय मे उसका दर्शन ज्ञान और चारित्र गुण निर्मल रहता है । व्यवहार नय मे जीव परद्रव्यो को जानता, देखता, छोडता और श्रद्धा करता है।

गाथा ३६६–३८२, रागादि अज्ञान भाव जीव मे होते हैं–

जीव मे दर्शन ज्ञान, चारित्र गुण विद्यमान है। वे पर द्रव्य मे नही है और न अज्ञान रूप हैं, अत उनको नष्ट नही किया जा सकता। रागादि अज्ञान भाव है, अत वे दर्शनादि गुणो मे नही होते। कोई द्रव्य अन्य द्रव्य मे गुण उत्पन्न नही कर सकता। रागादि की उत्पत्ति अज्ञान से अपने मे ही होती है वे अपने ही अशुद्ध परिणाम है। कोई व्यक्ति या द्रव्य दूसरे जीव मे राग-द्वेष उत्पन्न नही करता। स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द जीव को रागी-द्वेषी नही बनाते जीव ही उनको शुभ-अशुभ मान कर अज्ञान से राग-द्वेष करता है।

गाथा ३८३–४०७, ज्ञानचेतना, कर्मचेतना, कर्मफल चेतना–

जो जीव कर्म मे कर्तृत्व और कर्मफल मे भोक्तृत्व मानता है और सुखी-दुखी होता है वह आठ प्रकार के कर्मों का बन्ध करता है। यही

कर्म चेतना और कर्मफल चेतना कहलाती हैं। ये दोनो अज्ञान चेतना हैं। इनसे आठ प्रकार के कर्मो का वन्ध होता है, इसलिए ज्ञानी पुरुष भूत, भविष्य और वर्त्तमान के समस्त पापो का प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना करके स्वात्म-स्वरूप मे स्थित होता है। वही आत्मा निश्चय से चारित्र-स्वरूप है। यही ज्ञानचेतना कहलाती है। ज्ञानी जानता है कि शव्द, शास्त्र, रूप, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म, धर्म, अधर्म, काल, आकाश, अध्यवसान ये सव ज्ञान नही हैं, अपितु ज्ञान ही दीक्षा, सयम, अगपूर्वगतसूत्र, धर्म, अधर्म और सम्यग्दृष्टि है। आत्मा परद्रव्य को न ग्रहण करता है, न उसका त्याग करता है।

गाथा ४०८–४१२, लिंग मोक्षमार्ग नहीं है–

मुनि या गृहस्थ लिंग मोक्षमार्ग नही है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही मोक्ष-मार्ग है। इस मोक्षमार्ग मे ही आत्मा को स्थित करना चाहिए, उसका ध्यान करना चाहिए और उमी मे विहार करना चाहिए।

गाथा ४१३–४१५, उपसहार–

जो जीव नाना प्रकार के लिंगो मे ममत्व करते हैं, वे समय-सार को नही जानते। व्यवहार नय मुनि और श्रावक इन दो लिंगो को मोक्षमार्ग कहता है, किन्तु निश्चय नय किसी लिंग को मोक्षमार्ग मे इष्ट नही मानता। शुद्ध आत्मा न श्रमण है न श्रावक है। जो व्यक्ति इस 'समयपाहुड' को अर्थ और तत्त्व से जान कर इसके अर्थ मे स्थित होता है, वह उत्तम सुख अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

ससार मे 'समय-सार' से उत्तम कुछ नही है।

□□
□□

आत्मा तव तक अज्ञानी रहता है–

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहक च[1] कम्म णोकम्म ।
जा एसा खलु वुद्धी अप्पडिवुद्धो हवदि ताव ।। १-१९-१९

सान्वय अर्थ – (जा) जव तक इस आत्मा की (कम्मे) कर्म में– द्रव्यकर्म भावकर्म में (णोकम्मम्हि य) और शरीरादि नोकर्म में (अह) यह मैं हूँ (च) और (अहक) मुझमें (कम्म णोकम्म इदि) कर्म और नोकर्म है (एसा खलु वुद्धी) ऐसी वुद्धि है (ताव) तव तक (अप्पडिवुद्धो) अप्रतिवुद्ध–अज्ञानी (हवदि) है ।

अर्थ – जव तक इस आत्मा की द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म मे 'यह मैं हूँ' और 'मुझ मे कर्म और नोकर्म है' ऐसी वुद्धि रहती है, तव तक यह आत्मा अज्ञानी है (रहता है) ।

१ महाराष्ट्री प्राकृत मे अहम, जैन महाराष्ट्री मे अहय तथा अर्धमागधी मे अहग रूप वनता है । अर्धमागधी शौरसेनी और जैन महाराष्ट्री मे 'क' लुप्त हो जाता है । अशोक के शिलालेख मे 'हक' मिलता है ।, —पिशल

ज्ञानी और अज्ञानी जीव की पहचान—

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ।। १-२०-२०

आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि ।
होहिदि पुणो वि मज्झ अहमेदं चावि होस्सामि ।। १-२१-२१

एदं तु असभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो ।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ।। १-२२-२२

सान्वय अर्थ –(अण्ण) अपने से अन्य (ज) जो (सच्चित्ताचित्तमिस्स वा) स्त्री-पुत्रादिक सचित्त-चेतन, धन-धान्यादिक अचित्त-अचेतन और ग्रामनगरादि मिश्र चेतनाचेतन (परदव्व) जो परद्रव्य है, इनके सम्बन्ध में ऐसा समझे कि (अहमेद) यह मै हूँ (एदमह) ये द्रव्य मुझ स्वरूप है (अहमेदस्सेव होमि) मै इसका ही हूँ (एद मम) यह मेरा है (मम पुव्वमेद आसि) यह पूर्व मेरा था (पुव्वकालम्हि अह चावि एद) पूर्वकाल में मै भी इस रूप था (पुणो वि मज्झ होहिदि) भविष्य में भी ये मेरे होगे (अहमेद चावि होस्सामि) भविष्य में मै भी इस रूप होऊंगा (एद तु) इस प्रकार का (असभूद) मिथ्या (आद-वियप्प) आत्म-विकल्प (करेदि) जो करता है (समूढो) वह अज्ञानी-वहिरात्मा है (दु) और जो (भूदत्थ) भूतार्थ-परमार्थ वस्तुस्वरूप को (जाणतो) जानता हुआ (त) वैसा झूठा विकल्प (ण करेदि) नहीं करता, वह (असमूढो) ज्ञानी-अन्तरात्मा है ।

अर्थ – अपने से अन्य जो स्त्री-पुत्रादिक चेतन, धन-धान्यादिक अचेतन और ग्रामनगरादि चेतनाचेतन परद्रव्य है, इनके सम्वन्ध मे ऐसा समझे कि 'यह मैं हूँ,' 'यह द्रव्य मुझ स्वरूप है', 'मैं इसका ही हूँ', 'यह मेरा है', 'यह पूर्व मे मेरा था,' 'पूर्वकाल मे मैं भी इस रूप था', 'भविष्य मे भी यह मेरा होगा', 'भविष्य मे मैं भी इस रूप होऊँगा' इस प्रकार का मिथ्या आत्म विकल्प जो करता है, वह अज्ञानी (वहिरात्मा) है, और जो परमार्थ वस्तुस्वरूप को जानता हुआ वैसा झूठा विकल्प नही करता, वह ज्ञानी अन्तरात्मा है ।

आचार्य द्वारा प्रतिबोध–

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोंग्गल दव्वं।
बद्धमबद्ध च तहा जीवो बहुभावसजुत्तो ॥ १-२३-२३

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
किह सो पोंग्गलदव्वीभूदो ज भणसि मज्झमिणं ॥ १-२४-२४

जदि सो पोंग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागद इदर।
तो सक्का वोंत्तु जे मज्झमिण पोंग्गल दव्व ॥ १-२५-२५

सान्वय अर्थ – (अण्णाणमोहिदमदी) अज्ञान से जिसकी बुद्धि मोहित है (बहुभावसजुत्तो) मिथ्यात्व रागादि अनेक भावो से युक्त (जीवो) जीव (भणदि) कहता है कि (इण) यह (बद्ध) बद्ध-सम्बद्ध देहादि (तहा अबद्ध च) तथा अबद्ध देह से भिन्न स्त्री पुत्रादि (पोंग्गल दव्व) पुद्गल द्रव्य (मज्झ) मेरा है, किन्तु (सव्वण्हुणाण-दिट्ठो) सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा गया जो (णिच्च उवओगलक्खणो) सदा उपयोगलक्षण वाला (जीवो) जीव है (सो) वह (पोंग्गलदव्वी भूदो) पुद्गलद्रव्यरूप (किह) कैसे हो सकता है (ज) जो (भणसि) कहता है कि (मज्झमिण) यह पुद्गल द्रव्य मेरा है (जदि) यदि (सो) जीवद्रव्य (पोंग्गलदव्वीभूदो) पुद्गलद्रव्य रूप हो जाय और (इदर) पुद्गल द्रव्य (जीवत्तमागद) जीवत्व को प्राप्त हो जाय (तो) तो (वोंत्तु सक्का) कहा जा सकता (जे) कि (इण पोंग्गल दव्व) यह पुद्गल द्रव्य (मज्झ) मेरा है।

अर्थ – अज्ञान से मोहित बुद्धि वाला और मिथ्यात्व रागादि अनेक भावो से युक्त जीव कहता है कि यह बद्ध-सम्बद्ध देहादि तथा अबद्ध देह से भिन्न स्त्री-पुत्रादि पुद्गल द्रव्य मेरा है, किन्तु सर्वज्ञ के ज्ञान मे देखा गया जो सदा उपयोग-लक्षण वाला जीव है, वह पुद्गल द्रव्य रूप कैसे हो सकता है, जो कहता है कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है। यदि जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य रूप हो जाय और पुद्गलद्रव्य जीवत्व को प्राप्त हो जाय तो कहा जा सकता था कि यह पुद्गल द्रव्य मेरा है।

शिष्य पुन शका करता है–

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव ।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ।। १-२६-२६

सान्वय अर्थ – कोई अज्ञानी शिष्य पूछता है– (जदि) यदि (जीवो) जीव (सरीर) शरीर (ण) नहीं है तो (तित्थयरायरिय-सथुदी) तीर्थंकरो और आचार्यो की स्तुति (सव्वा वि) सभी (मिच्छा) मिथ्या (हवदि) है (तेण दु) इसलिए हम मानते हैं कि (आदा) आत्मा (देहोचेव) देह ही (हवदि) है।

अर्थ – (कोई अज्ञानी शिष्य कहता है कि) यदि जीव शरीर नही है तो तीर्थंकरो और आचार्यों की स्तुति करना सभी मिथ्या हो जायगा, इसलिए (हम मानते हैं कि) आत्मा देह ही है।

आचार्य उत्तर देते हैं–

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो ।। १-२७-२७

सान्वय अर्थ – शिष्य का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं– (ववहारणओ) व्यवहार नय (भासदि) कहता है कि (जीवो देहो य) जीव और देह (खलु) वस्तुतः (एक्को) एक (हवदि) है और (णिच्छयस्स दु) निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार तो (जीवो देहो य) जीव और देह (कदावि) कभी (एक्कट्ठो) एक पदार्थ (ण) नहीं है ।

अर्थ – (शिष्य का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं)–व्यवहार नय कहता है कि जीव और देह वस्तुत एक हैं और निश्चय नय के अभिप्राय के अनुसार तो जीव और देह कभी एक पदार्थ नही हैं ।

व्यवहार नय से केवली की स्तुति—

इणमण्ण जीवादो देह पोंग्गलमयं थुणित्तु मुणि ।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ।। १-२८-२८

सान्वय अर्थ—(जीवादो) जीव से (अण्ण) भिन्न (इण) इस (पोंग्गलमय देह) पुद्गलमय देह की (थुणित्तु) स्तुति करके (मुणी) मुनि (मण्णदि हु) ऐसा मानता है कि (मए) मैंने (केवली भयव) केवली भगवान की (सथुदो) स्तुति की और (वदिदो) वंदना की ।

अर्थ—जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मुनि ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवान की स्तुति की और वदना की ।

निश्चयनय से केवली की स्तुति–

तं णिच्छये ण जुञ्जदि ण सरीरगुणाहि हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलि थुणदि॥ १-२९-२९

सान्वय अर्थ – (त) वह स्तुति (णिच्छये) निश्चय नय में (ण जुञ्जदि) उचित नहीं है क्योंकि (सरीरगुणा) शरीर के शुक्ल कृष्णादि गुण (केवलिणो) केवली भगवान के (ण हि होंति) नहीं होते (जो) जो (केवलिगुणे) केवली भगवान के गुणो को (थुणदि) स्तुति करता है (सो) वह (तच्च) परमार्थ से (केवलि) केवली भगवान की (थुणदि) स्तुति करता है।

अर्थ – वह स्तुति निश्चय नय मे उचित नही है क्योंकि शरीर के (शुक्ल कृष्णादि) गुण केवली भगवान के नही होते। जो केवली भगवान के गुणो की स्तुति करता है, वह परमार्थ से केवली भगवान की स्तुति करता है।

देह-स्तुति गुण-स्तुति नही है–

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥ १-३०-३०

सान्वय अर्थ – (जह) **जैसे** (णयरम्मि) **नगर का** (वण्णिदे वि) **वर्णन करने पर भी** (रण्णो) **राजा का भी** (वण्णणा) **वर्णन** (कदा) **किया हुआ** (ण होदि) **नहीं होता, इसी प्रकार** (देहगुणे) **देह के गुणो की** (थुव्वतें) **स्तुति करने पर** (केवलिगुणा) **केवली भगवान के गुणो की** (ण थुदा होंति) **स्तुति नहीं होती ।**

अर्थ – जैसे नगर का वर्णन करने पर भी राजा का वर्णन किया हुआ नही होता, इसी प्रकार देह के गुणो की स्तुति करने पर केवली भगवान के गुणो की स्तुति नही होती ।

आत्मज्ञानी ही जितेन्द्रिय है–

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ।। १-३१-३१

सान्वय अर्थ – (जो) जो (इदिये) इन्द्रियो को (जिणित्ता) जीतकर (णाणसहावाधिय) ज्ञान स्वभाव से अधिक–शुद्धज्ञान-चेतना गुण से परिपूर्ण (आद) आत्मा को (मुणदि) जानता है–अनुभव करता है (त) उस पुरुष को (जे) जो (णिच्छिदा) निश्चय नय में स्थित (साहू) साधु है (ते) वे (खलु) निश्चय ही (जिदिंदिय) जितेन्द्रिय (भणति) कहते है ।

अर्थ – जो इन्द्रियो को जीतकर ज्ञानस्वभाव से अधिक (शुद्धज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण) आत्मा को जानता है (अनुभव करता है) उस पुरुष को जो निश्चय नय मे स्थित साधु है, वे निश्चय ही जितेन्द्रिय कहते है ।

मोहविजेता साधु–

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आदं ।
तं जिदमोह साहुं परमट्ठवियाणया विंति ।।१-३२-३२

सान्वय अर्थ –(जो तु) जो (मोह) मोह को (जिणित्ता) जीत कर (णाणसहावाधिय) ज्ञान स्वभाव से अधिक–शुद्ध ज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण (आद) आत्मा को (मुणदि) जानता है–अनुभव करता है (त साहु) उस साधु को (परमट्ठवियाणया) परमार्थ के जानने वाले पूर्वाचार्य (जिदमोह) मोहविजेता (विंति) कहते है ।

अर्थ –जो (साधु) मोह को जीतकर ज्ञान स्वभाव मे अधिक (शुद्धज्ञान-चेतना गुण से परिपूर्ण) आत्मा को जानता है (अनुभव करता है), उस साधु को परमार्थ के जानने वाले पूर्वाचार्य मोहविजेता कहते है ।

क्षीणमोह साधु–

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स ।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ।। १-३३-३३

सान्वय अर्थ –(जइया) जब (जिदमोहस्स) जिसने मोह जीत लिया है ऐसे (साहुस्स) साधु का (मोहो) मोह (खीणो) क्षीण (हवेज्ज) हो जाता है (तइया) तब (णिच्छयविदूहिं) निश्चय के जानने वाले (सो) उस साधु को (हु) निश्चय से (खीणमोहो) क्षीणमोह (भण्णदि) कहते हैं ।

अर्थ –जब जिसने मोह जीत लिया है ऐसे साधु का मोह क्षीण हो जाता है, तब निश्चय के जानने वाले उस साधु को निश्चय ही क्षीणमोह कहते हैं ।

प्रत्याख्यान ज्ञान है–

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खादी परे त्ति णादूण ।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ।। १-३४-३४

सान्वय अर्थ –(जम्हा) **यतः** (सव्वे भावा) **सब भावो को** (परे) **पर है** (त्ति णादूण) **यह जानकर** (पच्चक्खादी) **त्याग देता है** (तम्हा) **इस कारण** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान** (णाण) **ज्ञान ही है ऐसा** (णियमा) **नियम से–निश्चय से** (मुणेदव्व) **मननपूर्वक जानना चाहिए ।**

अर्थ – यत सव भावो को पर हैं यह जानकर त्याग देता है । इस कारण प्रत्याख्यान ज्ञान ही हैं, ऐसा निश्चय से (मननपूर्वक) जानना चाहिए ।

ज्ञानी द्वारा परभावों का त्याग–

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदु मुयदि ।
तह सव्वे परभावे णादूण विमुञ्चदे णाणी ॥१-३५-३५

सान्वय अर्थ –(जह णाम) जैसे लोक में (को वि पुरिसो) कोई पुरुष (इण परदव्व) यह परद्रव्य है (ति जाणिदु) ऐसा जानकर (मुयदि) उसे त्याग देता है (तह) उसी प्रकार (णाणी) ज्ञानी पुरुष (सव्वे परभावे) समस्त परभावों को (णादूण) ये परभाव हैं ऐसा जानकर उन्हें (विमुञ्चदे) छोड़ देता है।

अर्थ – जैसे लोक में कोई पुरुष यह पर द्रव्य है ऐसा जानकर उसे त्याग देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष समस्त परभावों को, ये परभाव है ऐसा जान कर उन्हें छोड़ देता है।

मोह मे निर्ममत्व–

णत्थि मम को वि मोहो वुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ।। १-३६-३६

सान्वय अर्थ–(वुज्झदि) जो ऐसा जानता है कि (मोहो) मोह (मम) मेरा (को वि णत्थि) कुछ भी नहीं है (एक्को) एक (उवओग एव अह) ज्ञान-दर्शनोपयोग रूप ही मैं हूँ (त) इस प्रकार जानने को (समयस्स) सिद्धान्त के अथवा आत्मतत्त्व के (वियाणया) जानने वाले पूर्वाचार्य (मोहणिम्ममत्त) मोह से निर्ममत्व (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – जो ऐसा जानता है कि मोह मेरा कुछ भी नही है, एक ज्ञान-दर्शनोपयोग रूप ही मैं हूँ, इस प्रकार जानने को सिद्धान्त या आत्मस्वरूप के ज्ञाता पूर्वाचार्य मोह से निर्ममत्व कहते हैं ।

धर्मद्रव्य से निर्ममत्व–

णत्थि हि मम धम्मादी वुज्झदि उवओग एव अहमेक्को ।
त धम्मणिम्ममत्त समयस्स वियाणया विति ॥ १-३७-३७

सान्वय अर्थ–(वुज्झदि) जो ऐसा जानता है कि (धम्मादी) धर्म आदि द्रव्य (मम हि णत्थि) निश्चय ही मेरे नहीं है (एक्को) एक (उवओग एव अह) उपयोग रूप ही मैं हूँ (त) ऐसा जानने को (समयस्स) सिद्धान्त या आत्मतत्त्व के (वियाणया) जानने वाले पूर्वाचार्य (धम्मणिम्ममत्त) धर्म द्रव्य से निर्ममत्व (विति) कहते हैं।

अर्थ–जो ऐसा जानता है कि धर्म आदि द्रव्य निश्चय ही मेरे नहीं हैं, एक ज्ञान-दर्शनोपयोग रूप ही मैं हूँ। इस प्रकार जानने को सिद्धान्त या आत्मतत्त्व के जाननेवाले पूर्वाचार्य धर्म द्रव्य से निर्ममत्व कहते हैं।

उपसहार--

अहमेक्को[1] खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सयारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि ।। १-३८-३८

सान्वय अर्थ – ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि (अह) मैं (एक्को) एक हूँ (खलु) निश्चय ही (सुद्धो) शुद्ध हूँ (दसणणाण-मइओ) दर्शन ज्ञानमय हूँ (सयारूवी) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के अभाव के कारण सदा अरूपी हूँ (किंचि वि अण्ण) कोई भी परद्रव्य (परमाणुमेत्त पि) परमाणु मात्र भी (मज्झ) मेरा (ण वि अत्थि) नहीं है ।

अर्थ – (ज्ञानी आत्मा यह जानता है कि) मैं एक हूँ, निश्चय ही शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञानमय हूँ, (रूप, रस, गध, स्पर्श के अभाव के कारण) सदा अरूपी हूँ, कोई भी अन्य पर द्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नही है ।

इदि पढमो जीवाधियारो समत्तो

1 सभी प्राकृत बोलियो में एक्क है —पिशल, पृ. ६४४

दुदियो जीवा जीवाधियारो

जीव के सम्बन्ध मे विभिन्न मान्यतायें—

अप्पाणमयाणता मूढा दु परप्पवादिणो केई ।
जीव अज्झवसाणं कम्म च तहा परूविति ।।२-१-३६

अवरे अज्झवसाणे सु तिव्वमदाणुभावग जीव ।
मण्णति तहा अवरे णोकम्म चावि जीवो त्ति ।।२-२-४०

कम्मस्सुदय जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छति ।
तिव्वत्तणमंदत्तण गुणेहि जो सो हवदि जीवो ।।२-३-४१

जीवो कम्मं उहय दोण्णि वि खलु के वि जीवमिच्छति ।
अवरे संजोगेण दु कम्माण जीवमिच्छति ।।२-४-४२

एवं विहा वहुविहा परमप्पाण वदति दुम्मेहा ।
ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहि णिद्दिट्ठा ।।२-५-४३

सान्वय अर्थ — (अप्पाणमयाणता) आत्मा को न जानते हुए (परप्पवादिणो) परद्रव्य को आत्मा कहने वाले (केई मूढा दु) कोई मूढ अज्ञानी तो (अज्झवसाण) रागादि अध्यवसान को (तहा च) और (कम्म) कर्म को (जीव) जीव (परूविति) कहते हैं (अवरे) अन्य कुछ लोग (अज्झवसाणेसु) रागादि अध्यवसानो में (तिव्वमदाणुभावग) तीव्र, मन्द तारतम्य स्वरूप शक्ति-माहात्म्य को (जीव) जीव (मण्णति) मानते हैं (तहा) तथा (अवरे) अन्य कोई (णोकम्म) नोकर्म-शरीरादि को (चावि) भी (जीवो त्ति) जीव है ऐसा मानते हैं (अवरे) अन्य कुछ लोग (कम्मस्सुदय) कर्म के उदय को (जीव) जीव मानते हैं, कुछ लोग (जो) जो (तिव्वत्तण-

मदत्तणगुणेहि) तीव्रता-मन्दता रूप गुणो से भेद को प्राप्त होता है (सो) वह (जीवो) जीव (हवदि) है इस प्रकार (कम्माणुभाग) कर्मो के अनुभाग को (इच्छति) जीव है ऐसा इष्ट करते हैं—मानते हैं (के वि) कोई (जीवोकम्म उहय) जीव और कर्म (दोण्णि वि) दोनो मिले हुओ को ही (खलु जीवमिच्छति) जीव मानते है (अवरे दु) और दूसरे (कम्माण सजोगेण) कर्मो के सयोग से (जीवमिच्छति) जीव मानते हैं (एव विहा) इस प्रकार के (वहुविहा) तथा अन्य भी अनेक प्रकार के (दुम्मेहा) दुर्बुद्धि मिथ्या दृष्टि लोग (पर) पर को (अप्पाण) आत्मा (वदति) कहते है (ते) ऐसे एकान्तवादी (परमट्ठवादी) परमार्थवादी (ण) नही हैं— ऐसा (णिच्छयवादीहि) निश्चयवादियो ने (णिद्दिट्ठा) कहा है ।

अर्थ – आत्मा को न जानते हुए परद्रव्य आत्मा को कहने वाले कोई मूढ-अज्ञानी तो रागादि अध्यवसान को और कर्म को जीव कहते हैं । अन्य कुछ लोग रागादि अध्यवसानो मे तीव्रमन्द तारतम्य स्वरूप शक्ति-माहात्म्य को जीव मानते हैं, तथा अन्य कोई नोकर्म-शरीरादि को भी जीव है ऐसा मानते हैं । अन्य कुछ लोग कर्म के उदय को जीव मानते हैं । कुछ लोग जो तीव्रता-मन्दता रूप गुणो मे भेद को प्राप्त होता है, वह जीव है, इस प्रकार कर्मो के अनुभाग को जीव है ऐसा इष्ट करते हैं—मानते हैं । कोई जीव और कर्म दोनो मिले हुओ को ही जीव मानते हैं । और दूसरे कर्म के सयोग से जीव मानते है। इस प्रकार के तथा अन्य भी वहुत प्रकार के मूढ लोग पर को आत्मा कहते है। ऐसे एकान्तवादी परमार्थवादी नही है, ऐसा निश्चयवादियो ने कहा है ।

अध्यवसानादि जीव नही हैं—

एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्व परिणामणिप्पण्णा ।
केवलिजिणेहि भणिदा किह[1] ते जीवो त्ति वुच्चति ।। २-६-४४

सान्वय अर्थ—(एदे) ये—पूर्वोक्त अध्यवसानादिक (सव्वे भावा) समस्त भाव (पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा) पुद्गल द्रव्यकर्म के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार (केवलिजिणेहि) केवली जिनेन्द्र भगवान ने (भणिदा) कहा है (ते) वे (जीवो) जीव हैं (त्ति) ऐसा (किह) किस प्रकार (वुच्चति) कहा जा सकता है।

अर्थ—ये पूर्वोक्त अध्यवसानादिक समस्त भाव पुद्गल द्रव्यकर्म के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार केवली जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। वे जीव हैं, ऐसा किस प्रकार कहा जा सकता है।

१ प्राचीन ताडपत्रीय प्रतियो मे किह पाठ उपलब्ध होता है। प्राकृत व्याकरण के अनुसार अर्धमागधी और जैन महाराष्ट्री मे भी किह बनता है। —पिशल, पैरा १०३।

आठो कर्म पुद्‌गलमय हैं—

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोंग्गलमय जिणा विंति ।
जस्स फल तं वुच्चदि दुक्ख ति विपच्चमाणस्स ।। २-७-४५

सान्वय अर्थ — (अट्ठविह पि य) **आठो प्रकार के** (सव्व कम्म) **समस्त कर्म** (पोंग्गलमय) **पुद्‌गलमय है ऐसा** (जिणा) **जिनेन्द्रदेव** (विंति) **कहते है** (विपच्चमाणस्स) **पककर उदय में आने वाले** (जस्स) **जिस कर्म का** (फल) **फल** (त) **प्रसिद्ध** (दुक्खं) **दु ख है** (ति वुच्चदि) **ऐसा कहा है ।**

अर्थ — आठो प्रकार के समस्त कर्म पुद्‌गल मय हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं । पककर उदय मे आने वाले जिस कर्म का फल प्रसिद्ध दु ख है, ऐसा कहा है ।

व्यवहार नय मे रागादि भाव जीव हैं—

ववहारस्स दरीसणमुवदेसो वण्णिदो जिणवरेंहि ।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ।। २-८-४६

सान्वय अर्थ—(एदे) ये (सव्वे) समस्त (अज्झवसाणाद ओ) अध्यवसानादिक (भावा) भाव (जीवा) जीव है—ऐसा (जिणवरेंहि) जिनेन्द्रदेवो ने (उवदेसो वण्णिदो) जो उपदेश दिया है वह (ववहारस्स) व्यवहार नय का (दरीसण) दर्शन-कथन है।

अर्थ—ये समस्त अध्यवसानादिक भाव जीव है ऐसा जिनेन्द्रदेवो ने जो उपदेश दिया है, वह व्यवहार नय का कथन है।

व्यवहार और निश्चय से जीव का कथन—

राया खु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो ।
ववहारेण दु वुच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया ।। २-९-४७

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाण ।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो ।। २-१०-४८

सान्वय अर्थ – (वलसमुदयस्स) **सेना के समूह को निकलते देख कर** (राया खु) **राजा ही** (णिग्गदो) **निकला है** (त्ति य आदेसो) **इस प्रकार का जो कथन है वह** (ववहारेण दु) **व्यवहार नय से** (वुच्चदि) **किया जाता है** (तत्थ) **वहाँ तो वास्तव में** (एक्को राया) **एक ही** (राया) **राजा** (णिग्गदो) **निकला है** (एमेव य) **इसी प्रकार** (अज्झवसाणादि अण्णभावाण) **जीव से भिन्न अध्यवसानादि भावो को** (सुत्ते) **परमागम में** (जीवो त्ति) **ये जीव हैं यह** (ववहारो) **व्यवहार** (कदो) **किया गया है—व्यवहार नय से कहा है किन्तु** (तत्थ) **उन रागादि परिणामो में** (णिच्छिदो) **निश्चय नय से** (जीवो) **जीव तो** (एक्को) **एक ही है ।**

अर्थ – सेना के समूह को (निकलते देखकर) 'राजा ही निकला है' इस प्रकार का जो कथन है, वह व्यवहार नय से किया जाता है। वास्तव मे तो वहाँ एक ही राजा निकला है । इसी प्रकार जीव से भिन्न अध्यवसानादि भाव जीव हैं, परमागम मे यह व्यवहार किया गया है (व्यवहार नय से कहा गया है), किन्तु निश्चय नय से उन रागादि परिणामो मे जीव तो एक ही है।

परमार्थ जीव का स्वरूप–

अरसमरूवमगंध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द ।
जाण अलिंगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण ।। २-११-४९

सान्वय अर्थ – (अरस) जो रसरहित है (अरूव) रूपरहित है (अगध) गन्धरहित है (अव्वत्त) अव्यक्त–इन्द्रियो के अगोचर है (चेदणागुण) चेतना गुण से यक्त है (असद्द) शब्द रहित है (अलिंगग्गहण) किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं होता (अणिद्दिट्ठसठाण) और जिसका आकार बताया नहीं जा सकता (जीव) उसे जीव (जाण) जानो ।

अर्थ – जो रसरहित है, रूपरहित है, गन्धरहित है, इन्द्रियो के अगोचर है, चेतना गुण से युक्त है, शब्दरहित है, किसी चिह्न या इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नही होता और जिसका आकार बताया नही जा सकता, उसे जीव जानो ।

वर्णादि भाव जीव के परिणाम नही हैं–

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो ।
ण वि रूव ण सरीर ण वि सठाण ण सहणण ।। २-१२-५०

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्म णोकम्मं चावि से णत्थि ।। २-१३-५१

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणा वा ।। २-१४-५२

जीवस्स णत्थि केई जोगट्ठाणा ण बंधठाणा वा ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ।। २-१५-५३

णो ठिदि बंधट्ठाणा जीवस्स ण सकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ।। २-१६-५४

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पोंग्गलदव्वस्स परिणामा ।। २-१७-५५

सान्वय अर्थ – (जीवस्स) जीव के (वण्णो) वर्ण (णत्थि) नहीं है (ण वि गधो) गन्ध भी नहीं है (ण वि रसो) रस भी नहीं है (ण वि य फासो) और स्पर्श भी नहीं है (ण वि रूव) रूप भी नहीं है (ण सरीर) शरीर भी नहीं है (ण वि सठाण) आकार भी नहीं है (ण सहणण) सहनन भी नहीं है (जीवस्स) जीव के (रागो) राग (णत्थि) नहीं है (ण वि दोसो) द्वेष भी नहीं है (मोहो) मोह (णेव विज्जदे) भी नहीं है (पच्चया णो) आस्रव भी नहीं है (ण कम्म) न कर्म है (णोकम्म चावि) नोकर्म भी (से) उसके (णत्थि) नहीं है (जीवस्स) जीव के (वग्गो) वर्ग (णत्थि) नहीं है (ण वग्गणा) न वर्गणा है (केई) कोई (फड्ढया णेव) स्पर्धक भी नहीं है (णो

अज्झप्पट्ठाणा) न अध्यात्मस्थान हैं (य) और (अणुभागठाणा वा) अनुभागस्थान भी (णेव) नहीं हैं (जीवस्स) जीव के (केई जोगट्ठाणा) कोई योगस्थान (णत्थि) नहीं हैं (बधठाणा वा ण) बन्धस्थान भी नहीं है (य) और (उदयट्ठाणा) उदयस्थान (णेव) भी नहीं हैं (केई मग्गणट्ठाणया ण) कोई मार्गणास्थान भी नहीं हैं (जीवस्स) जीव के (ठिदिबधट्ठाणा णो) स्थितिबधस्थान भी नहीं हैं (ण सकिलेसठाणा वा) न सक्लेशस्थान हैं (णेव विसोहिट्ठाणा) विशुद्धिस्थान भी नहीं है (सजमलद्धिठाणा वा णो) सयमलब्धिस्थान भी नहीं हैं (य) और (णेव जीवट्ठाणा) जीवस्थान भी नहीं हैं (य) और (जीवस्स) जीव के (गुणट्ठाणा) गुणस्थान (ण अत्थि) नहीं हैं (जेण दु) क्योकि (एदे सव्वे) ये सब (पोंग्गलदव्वस्स) पुद्गल द्रव्य के (परिणामा) परिणमन हैं।

अर्थ – जीव के वर्ण नही है, गन्ध भी नही है, रस भी नही है, स्पर्श भी नही है, रूप भी नही है, शरीर भी नही है, सस्थान (आकार) भी नही है, सहनन भी नही है। जीव के राग नही है, द्वेष भी नही है, मोह भी नही है, आस्रव भी नही है, कर्म भी नही है, उनके नोकर्म भी नही है। जीव के वर्ग नही है, वर्गणा नही है, कोई स्पर्धक भी नही है, अध्यात्मस्थान भी नही हैं और अनुभागस्थान भी नही हैं। जीव के कोई योगस्थान नही है, बधस्थान भी नही है और उदयस्थान भी नही हैं, कोई मार्गणास्थान भी नही है। जीव के स्थितिबधस्थान भी नहीं है, सक्लेशस्थान भी नही है, विशुद्धिस्थान भी नही है, सयमलब्धिस्थान भी नही है और जीवस्थान भी नही हैं और जीव के गुणस्थान नही हैं, क्योकि ये सब पुद्गल के परिणमन हैं।

जीव का नयसापेक्ष स्वरूप–

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया ।
गुणठाणता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥ २-१८-५६

सान्वय अर्थ – (एदे) ये (वण्णमादीया) वर्ण से लेकर (गुण-ठाणता) गुणस्थान पर्यन्त (भावा) भाव (ववहारेण दु) व्यवहार नय से (जीवस्स) जीव के (हवंति) होते है (दु) परन्तु (णिच्छय-णयस्स) निश्चय नय के मत में (केई ण) उनमें से कोई नहीं है ।

अर्थ – ये वर्ण मे लेकर गुणस्थानपर्यन्त भाव व्यवहार नय मे जीव के होते हैं, परन्तु निश्चय नय के मत मे उनमे से कोई भी जीव के नही हैं ।

जीव का पुद्गल के साथ सम्बन्ध–

एदेहि य संबंधो जहेव खीरोदय[1] मुणेदव्वो ।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा । २-१६-५७

सान्वय अर्थ –(एदेहि य) इन वर्णादिक भावो के साथ (संबंधो) जीव का सम्बन्ध (खीरोदय जहेव) दूध और जल के समान-संयोग सम्बन्ध (मुणेदव्वो) मननपूर्वक जानना चाहिये (य) और (ताणि) वे-वर्णादिक भाव (तस्स दु) उस जीव के (ण होंति) नही है (जम्हा) क्योंकि (उवओगगुणाधिगो) जीव उपयोग गुण से परिपूर्ण है ।

अर्थ – इन वर्णादिक भावो के साथ जीव का संबंध दूध और जल के समान (संयोग-सम्बन्ध) मननपूर्वक जानना चाहिये, और वे वर्णादिक भाव जीव के नही है क्योंकि जीव उपयोगगुण से परिपूर्ण है ।

१–कभी-कभी शौरसेनी और मागधी मे क ही बना रहता है। अर्धमागधी, जैन महाराष्ट्री और जैन शौरसेनी मे इसके स्थान मे ग और य रहते हैं । अन्य प्राकृत बोलियो मे, क का अ हो जाता है। पंचास्तिकाय गाथा ११० में 'उदग' आया है ।

जीव मे वर्णादि का कथन व्यवहार नय मे है—

पथे मुस्सत पस्सिदूण लोगा भणति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ।। २-२०-५८

तह जीवे कम्माणं णोकम्माण च पस्सिदुं वण्णं ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ।। २-२१-५९

गधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ।। २-२२-६०

सान्वय अर्थ – (पथे) मार्ग में (मुस्सत) किसी को लुटता हुआ (पस्सिदूण) देखकर (ववहारी लोगा) व्यवहारी जन (भणति) कहते हैं कि (एसो पथो) यह मार्ग (मुस्सदि) लुटता है, किन्तु (कोई पथो) कोई मार्ग (ण य) नहीं (मुस्सदे) लुटता (तह) उसी प्रकार (जीवे) जीव में (कम्माण) कर्मो का (णोकम्माण च) और नोकर्मों का (वण्ण) वर्ण (पस्सिदु) देखकर (जीवस्स) जीव का (एस वण्णो) यह वर्ण है- ऐसा (जिणेहि) जिनेन्द्रदेव ने (ववहारदो) व्यवहार से (उत्तो) कहा है—इसी प्रकार (गधरसफासरूवा) गन्ध, रस, स्पर्श, रूप (देहो) शरीर (जे य) और जो (सठाणमाइया) सस्थान आदि जीव के हैं (सव्वे य) वे सब (ववहारस्स) व्यवहार से (णिच्छयदण्हू) निश्चयदर्शी (ववदिसति) कहते हैं ।

अर्थ – मार्ग मे किसी को लुटता हुआ देखकर व्यवहारी जन कहते है कि यह मार्ग लुटता है, किन्तु कोई मार्ग नही लुटता (वस्तुत पथिक लुटते हैं), इसी प्रकार जीव मे कर्मो और नोकर्मो का वर्ण देखकर जीव का यह वर्ण है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने व्यवहार से कहा है । इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शरीर और जो सस्थान आदि जीव के हैं, वे सब व्यवहार से निश्चयदर्शी कहते हैं।

ससारी जीवो के वर्णादि का सम्वन्ध–

तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होति वण्णादी ।
संसारपमुक्काणं णत्थि दु वण्णादओ केई ।। २-२३-६१

सान्वय अर्थ – (तत्थ भवे) **संसार अवस्था में** (मसारत्थाण जीवाण) **संसारी जीवो के** (वण्णादी) **वर्णादि भाव** (होति) **होते हैं** (ससारपमुक्काण) **संसार से मुक्त जीवो के** (दु) **तो** (केई) **कोई** (वण्णादओ) **वर्णादि** (णत्थि) **नहीं है।**

अर्थ – ससार अवस्था मे ससारी जीवो के वर्णादि भाव होते हैं। ससार से मुक्त जीवो के तो कोई वर्णादि नही है।

जीव और वर्णादि का तादात्म्य मानने मे दोष—

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि ।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ।। २-२४-६२

सान्वय अर्थ – **जीव का वर्णादि से तादात्म्य सम्बन्ध मानने वालो को समझाते हुए कहते हैं** – (जदिहि) **यदि तू** (त्ति मण्णसे) **ऐसा मानता है कि** (एदे) **ये** (सव्वे) **समस्त** (भाव) **भाव** (हि) **वास्तव में** (जीवो चेव) **जीव ही हैं** (दु) **तो** (दे) **तेरे मत में** (जीवस्सा-जीवस्स य) **जीव और अजीव के मध्य** (कोई) **कोई** (विसेसो) **भेद** (णत्थि) **नहीं रहता।**

अर्थ – जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्य सम्बन्ध मानने वालो को समझाते हुए कहते हैं–यदि तू ऐसा मानता है कि ये समस्त भाव वास्तव मे जीव ही हैं तो तेरे मत मे जीव और अजीव के मध्य कोई भेद नही रहता ।

पूर्वोक्त कथन का और स्पष्टीकरण—

अह ससारत्थाण जीवाण तुज्झ होति वण्णादी ।
तम्हा ससारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥ २-२५-६३

एव पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी ।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्त पोग्गलो पत्तो ॥ २-२६-६४

सान्वय अर्थ — (अह) अथवा यदि (तुज्झ) तेरे मत में (ससारत्थाण जीवाण) ससार में स्थित जीवो के (वण्णादी) वर्णादिक—तादात्म्य रूप से (होति) होते है (तम्हा) तो इस कारण से (ससारत्था) ससार में स्थित (जीवा) जीव (रूवित्तमावण्णा) रूपीपने को प्राप्त हो गये (एव) इस प्रकार (मूढमदी) हे मूढमते ! (तहलक्खणेण) रूपित्व लक्षण पुद्गल द्रव्य का होने से (पोग्गलदव्व) पुद्गल द्रव्य ही (जीवा) जीव कहलाया (य) और (णिव्वाणमुवगदो वि) निर्वाण प्राप्त होने पर भी (पोग्गलो) पुद्गल ही (जीवत्त) जीवत्व को (पत्तो) प्राप्त हो गया ।

अर्थ — अथवा यदि तेरे मत मे ससार मे स्थित जीवो के वर्णादिक (तादात्म्य रूप से) होते है तो इस कारण ससार मे स्थित जीव रूपीपने को प्राप्त हो गये । इस प्रकार हे मूढमते ! रूपित्व लक्षण पुद्गल द्रव्य का होने से पुद्गल द्रव्य ही जीव कहलाया और (ससार-दशा मे ही नही) निर्वाण-प्राप्त होने पर भी (निर्वाण-अवस्था मे भी) पुद्गल ही जीवत्व को प्राप्त हो गया ।

जीवस्थान जीव नही हैं–

एक्क च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा ।
वादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ।। २-२७-६५

एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा दु करणभूदाहिं ।
पयडीहिं पोंग्गलमइहि ताहि किह भण्णदे जीवो ।। २-२८-६६

सान्वय अर्थ — (एक्क च) एकेन्द्रिय (दोण्णि) दोइन्द्रिय (निण्णि य) तीन इन्द्रिय (चत्तारि य) चार इन्द्रिय (पच इदिया) पचेन्द्रिय (वादरपज्जत्तिदरा) वादर, पर्याप्त और इनसे इतर सूक्ष्म और अपर्याप्त (जीवा) जीव—ये (णामकम्मस्स) नामकर्म की (पयडीओ) प्रकृतियाँ है (एदाहि य) इन (करणभूदाहि) करणभूत (पयडीहि) प्रकृतियो से जो (पोंग्गलमइहि) पौद्गलिक है (ताहि) उनसे (दु) तो (जीवट्ठाणा) जीवस्थान (णिव्वत्ता) रचे गये है तव वे (जीवो) जीव (किह) किस प्रकार (भण्णदे) कहे जा सकते है ।

अर्थ — एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पचेन्द्रिय, वादर, पर्याप्त और इनमे इतर मूक्ष्म और अपर्याप्त जीव ये नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं। इन करणभूत प्रकृतियो मे, जो पौद्गलिक हैं उनसे तो जीवस्थान रचे गये है । तव वे जीव किम प्रकार कहे जा सकते है ?

देह की जीव संज्ञा व्यवहार से है–

पज्जत्तापज्जत्ता जं सुहुमा वादरा य जे जीवा[1] ।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥ २-२९-६७

सान्वय अर्थ – (जे) जो (पज्जत्तापज्जत्ता) पर्याप्त तथा अपर्याप्त (य) और (जे) जो (सुहुमावादरा) सूक्ष्म तथा वादर (जीवा) जीव कहे गये हैं वे (देहस्स) देह की अपेक्षा (जीवसण्णा) जीव संज्ञाएँ हैं, वे सब (सुत्ते) परमागम में (ववहारदो) व्यवहार से (उत्ता) कही गई हैं ।

अर्थ – जो पर्याप्त तथा अपर्याप्त और जो सूक्ष्म तथा वादर जीव कहे गये हैं, वे देह की अपेक्षा जीव संज्ञाएँ हैं । वे सब परमागम में व्यवहार नय से कही गई हैं ।

---

१ जे चेव इत्यपि पाठ ।

गुणस्थान जीव नही हैं–

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते किह हवति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ।। २-३०-६८

सान्वय अर्थ–(जे इमे) जो ये (गुणट्ठाणा) गुणस्थान है वे (मोहणकम्मम्मुदया दु) मोहनीय कर्म के उदय से (वण्णिदा) बतलाये गये है (जे) जो (णिच्चमचेढणा) नित्य अचेतन (उत्ता) कहे गये है (ते) वे (जीवा) जीव (किह) किस प्रकार (हवति) हो सकते है ।

अर्थ—जो ये गुणस्थान हैं, वे मोहनीय कर्म के उदय से बतलाये गये हैं । जो नित्य अचेतन कहे गये हैं, वे जीव किस प्रकार हो सकते हैं ।

इदि दुदियो जीवाजीवाधियारो समत्तो

तिदियो कत्तिकम्माधियारो

जीव के कर्म-बन्ध कैसे होता है—

जाव ण वेदि विसेसतर तु आदासवाण दोण्ह पि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ।। ३-१-६९

कोहादिसु वट्टतस्स तस्स कम्मस्स सचओ होदि ।
जीवस्सेव वधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ।। ३-२-७०

सान्वय अर्थ—(जीवो) जीव (जाव) जब तक (आदासवाण) आत्मा और आस्रव (दोण्ह पि तु) दोनो के ही (विसेसतर) भिन्न-भिन्न लक्षण और भेद को (ण वेदि) नहीं जानता है (ताव दु) तब तक (सो) वह (अण्णाणी) अज्ञानी (कोहादिसु) क्रोधादिक आस्रवो में (वट्टदे) प्रवृत रहता है (कोहादिसु) क्रोधादिक आस्रवो में (वट्टतस्स) वर्तते हुए (तस्स) उसके (कम्मस्स) कर्मों का (सचओ) सचय (होदि) होता है (खलु) वास्तव में (एव) इस प्रकार (जीवस्स) जीव के (वधो) कर्मों का बन्ध (सव्वदरिसीहिं) सर्वज्ञ-देवो ने (भणिदो) वताया है ।

अर्थ—जीव जव तक आत्मा और आस्रव दोनो के ही (भिन्न-भिन्न) लक्षण और भेद को नही जानता है, तव तक वह अज्ञानी क्रोधादिक आस्रवो मे प्रवृत्त रहता है। क्रोधादिक आस्रवो मे वर्तते हुए उसके कर्मों का सचय होता है। वास्तव मे जीव के इस प्रकार कर्मों का वन्ध सर्वज्ञदेवो ने वताया है।

ज्ञान से वन्ध का निरोध–

नइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णाद होदि विसेसतर तु तइया ण बंधो से ।। ३-३-७१

सान्वय अर्थ – (जइया) जव (इमेण जीवेण) यह जीव (अप्पाण) आत्मा का (तहेव य) तथा (आसवाण) आस्रवो का (विसेसतर) भिन्न-भिन्न लक्षण और भेद (णाद होदि) जान लेता है (तइया तु) तव (से) उसके (वधो) कर्मबन्ध (ण) नहीं होता ।

अर्थ – जव यह जीव आत्मा का और आस्रवो का (भिन्न-भिन्न) लक्षण और भेद जान लेता है, तव उसके कर्मवन्ध नही होता ।

भेदज्ञान से आस्रव-निवृत्ति–

णादूण आसवाणं, असुचित्तं च विवरीदभावं च।
दुक्खस्स कारणं त्ति य, तदो णियत्ति कुणदि जीवो ।। ३-४-७२

सान्वय अर्थ – (आसवाण) आस्रवो का (असुचित्त च) अशुचिपना (विवरीदभाव च) विपरीतता (य) और (दुक्खस्स कारण) वे दु ख के कारण है (त्ति) यह (णादूण) जानकर (जीवो) जीव (तदो णियत्ति) उनसे निवृत्ति (कुणदि) करता है।

अर्थ – आस्रवो का अशुचिपना, इनका विपरीत भाव और वे दु ख के कारण हैं, यह जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।

आत्म स्वभाव मे स्थिति से आस्रवो का क्षय–

अहमेक्को खलु सुद्धो य णिम्ममो णाणदंसणसमग्गो ।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ।। ३-५-७३

सान्वय अर्थ – ज्ञानी विचार करता है कि (अह) मैं (खलु) निश्चय ही (एक्को) एक हूँ (सुद्धो) शुद्ध हूँ (य) और (णिम्ममो) ममत्वरहित हूँ (णाणदसणसमग्गो) ज्ञान और दर्शन से परिपूर्ण हूँ (तम्हि ठिदो) उक्त लक्षण वाले शुद्धात्मस्वरूप में स्थित (तच्चित्तो) अपने सहजानन्द स्वरूप में तन्मय हुआ मै (एदे सव्वे) इन सब क्रोधादिक आस्रवो को (खय) नष्ट (णेमि) कर देता हूँ ।

अर्थ – (ज्ञानी विचार करता है कि) मैं निश्चय ही एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्व-रहित हूँ और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ । (उक्त लक्षण वाले) शुद्धात्मस्वरूप मे स्थित और सहजानन्द स्वरूप मे तन्मय हुआ मैं इन सब (क्रोधादिक आस्रवो) को नष्ट करता हूँ ।

ज्ञानी आस्रवों से निवृत्त होता है–

जीवणिवद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खफला त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ।। ३-६-७४

सान्वय अर्थ – (एदे) ये आस्रव (जीवणिवद्धा) जीव के साथ निवद्ध हैं (अधुव) अध्रुव हैं (अणिच्चा) अनित्य हैं (तहा य) तथा (असरणा) अशरण हैं–रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं (य) और ये (दुक्खा) दु.खरूप हैं (दुक्खफला) दु खरूप फल देने वाले हैं (त्ति णादूण) यह जानकर ज्ञानी (तेहि) उन आस्रवो से (णिवत्तदे) निवृत्त होता है ।

अर्थ – ये क्रोधादि आस्रव जीव के साथ निवद्ध है, अध्रुव है, अनित्य हैं तथा अशरण हैं (रक्षा करने मे समर्थ नही हैं) और ये दु खरूप हैं और दु खरूप फल देने वाले है । यह जानकर (ज्ञानी) उन आस्रवो से निवृत्त होता है ।

ज्ञानी की पहिचान–

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ।
ण करेदि एदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ ३-७-७५

सान्वय अर्थ – (जो) जो (आदा) आत्मा (एद) इस (कम्मस्स य) कर्म के (परिणाम) परिणाम को (तहेव य) इसी प्रकार (णोकम्मस्स) नोकर्म के (परिणाम) परिणाम को (ण) नहीं (करेदि) करता है, अपितु जो (जाणदि) जानता है (सो) वह (णाणी) ज्ञानी (हवदि) है।

अर्थ–जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को, इसी प्रकार नोकर्म के परिणाम को नही करता है, अपितु जो जानता है, वह ज्ञानी है।

ज्ञानी मे परिणमन नही करता—

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि[1] उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पॅग्गलकम्म अणेयविह ।। ३-८-७६

सान्वय अर्थ – (णाणी) **ज्ञानी** (अणेयविह) **अनेक प्रकार के** (पॅग्गलकम्म) **पौद्गलिक कर्मो को** (जाणतो वि) **जानता हुआ भी** (हु) **निश्चय से** (परदव्वपज्जाए) **परद्रव्य की पर्यायो में** (ण वि परिणमदि) **न उन स्वरूप परिणमन करता हैं** (ण गिण्हदि) **न उन्हें ग्रहण करता हैं** (ण उप्पज्जदि) **न उन रूप उत्पन्न होता हैं ।**

अर्थ – ज्ञानी अनेक प्रकार के पौद्गलिक कर्मों को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायो मे न उन स्वरूप परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न होता है।

१ जैन शौरसेनी मे गिण्हदि तथा शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी मे गेण्हदि रूप बनता है। —पिशल, पृ ७४७

ज्ञानी अपने परिणामो को जानता है–

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविह ।। ३-६-७७

सान्वय अर्थ – (णाणी) ज्ञानी (अणेयविह) अनेक प्रकार के (सगपरिणाम) अपने परिणामो को (जाणतो वि) जानता हुआ भी (हु) निश्चय से (परदव्वपज्जाए) परद्रव्य की पर्यायो में (ण वि परिणमदि) न तो परिणमन करता है (ण गिण्हदि) न उन्हें ग्रहण करता है (ण उप्पज्जदि) न उन रूप उत्पन्न ही होता है ।

अर्थ – ज्ञानी अनेक प्रकार के अपने परिणामो को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायो मे न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न ही होता है ।

ज्ञानी कर्म-फल को जानता है–

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पोंग्गलकम्मफलं अणंतं ।। ३-१०-७८

सान्वय अर्थ – (णाणी) ज्ञानी (अणत) अनन्त (पोंग्गलकम्मफलं) पौद्गलिक कर्मों के फल को (जाणतो वि) जानता हुआ भी (हु) निश्चय से (परदव्वपज्जाए) पर द्रव्य के पर्यायो में (ण वि परिणमदि) न तो परिणमन करता है (ण गिण्हदि) न ग्रहण करता है (ण उप्प-ज्जदि) न उनरूप उत्पन्न होता है ।

अर्थ – ज्ञानी पौद्गलिक कर्मों के अनन्त फल को जानता हुआ भी निश्चय से परद्रव्यो के पर्यायो मे न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उनरूप उत्पन्न होता है ।

पुद्गल द्रव्य पररूप परिणमन नही करता—

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
पोंग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सगेहि भावेहिं ।। ३-११-७९

सान्वय अर्थ – (पोंग्गलदव्व पि) पुद्गल द्रव्य भी (परदव्व-पज्जाए) परद्रव्य की पर्यायो में (तहा) उस रूप (ण वि परिणमदि) न तो परिणमन करता है (ण गिण्हदि) न उन्हें ग्रहण करता है (ण उप्पज्जदि) न उन रूप उत्पन्न होता है, क्योंकि वह तो (सगेहि भावेहि) अपने ही भावो से (परिणमदि) परिणमन करता है।

अर्थ – पुद्गल द्रव्य भी परद्रव्य की पर्यायो मे उस रूप न तो परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उन रूप उत्पन्न होता है, क्योकि वह तो अपने ही भावो से परिणमन करता है।

जीव और पुद्गल के परिणामो मे निमित्त-नैमित्तिक भाव है–

जीव परिणामहेदु कम्मत्त पोंग्गला परिणमंति ।
पोंग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ।। ३-१२-८०

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणाम जाण दोण्ह पि ।। ३-१३-८१

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सगेण भावेण ।
पोंग्गलकम्मकदाण ण दु कत्ता सव्वभावाणं ।। ३-१४-८२

मान्वय अर्थ – (पोंग्गला) पुद्गल (जीव परिणामहेदु) जीव के परिणाम के निमित्त से (कम्मत्त) कर्मरूप से (परिणमति) परिणमित होते है (तहेव) इसी प्रकार (जीवो वि) जीव भी (पोंग्गलकम्म-णिमित्त) पुद्गल कर्म के निमित्त से–रागादि भाव रूप से (परिणमदि) परिणमन करता है (जीव) जीव (कम्मगुणे) कर्म के गुणो को (ण वि कुव्वदि) नहीं करता है (तहेव) इसी प्रकार (कम्म) कर्म (जीवगुणे) जीव के गुणो को नहीं करता है (दु) परन्तु (अण्णोण्ण-णिमित्तेण) एक-दूसरे के निमित्त से (दोण्ह पि) इन दोनो के (परिणाम) परिणाम (जाण) जानो (एदेण कारणेण दु) इस कारण से (आदा) आत्मा (सगेण भावेण) अपने ही भावो से (कत्ता) कर्त्ता है (दु) परन्तु (पोंग्गलकम्मकदाण) पुद्गल कर्म से किये गये (सव्वभावाण) समस्त भावो का (कत्ता ण) कर्त्ता नहीं है ।

अर्थ – पुद्गल जीव के (रागादि) परिणाम के निमित्त से कर्म रूप मे परि-णमित होते हैं । इसी प्रकार जीव भी (मोहनीय आदि) पुद्गलकर्म निमित्त से (रागादि भाव रूप से) परिणमन करता है । जीव कर्म के गुणो को नही करता है । इसी प्रकार कर्म जीव के गुणो को नही करता है, परन्तु एक-दूसरे के निमित्त से इन दोनो के परिणाम जानो । इस कारण से आत्मा अपने ही भावो से कर्त्ता है, परन्तु पुद्गल कर्म के द्वारा किये हुए समस्त भावो का कर्त्ता नही है ।

निश्चयनय से आत्मा अपना ही कर्त्ता और भोक्ता है—

णिच्छ्यणयस्स एव आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ।। ३-१५-८३

सान्वय अर्थ – (णिच्छयणयस्स) निश्चयनय का (एव) इस प्रकार मत है कि (आदा) आत्मा (अप्पाणमेव हि) अपने को ही (करेदि) करता है (दु पुणो) और फिर (अत्ता) आत्मा (त चेव अत्ताण) अपने को ही (वेदयदि) भोगता है (जाण) ऐसा तू जान ।

अर्थ – (निश्चयनय का इस प्रकार मत है कि) आत्मा अपने को ही करता है और फिर आत्मा अपने को ही भोगता है, ऐसा तू जान ।

व्यवहार से आत्मा पुद्गल कर्मो का कर्त्ता और भोक्ता है—

ववहारस्स दु आदा पोॅग्गलकम्मं करेदि णेयविह ।
तं चेव य वेदयदे पोॅग्गलकम्मं अणेयविह ।। ३-१६-८४

सान्वय अर्थ – (ववहारस्स दु) व्यवहार नय का मत है कि (आदा) आत्मा (णेयविह) अनेक प्रकार के (पोॅग्गलकम्म) पुद्गल कर्मो को (करेदि) करता है (चेव य) और (त) उसी (अणेयविह) अनेक प्रकार के (पोॅग्गलकम्म) पुद्गल कर्म को (वेदयदे) भोगता है।

अर्थ – व्यवहार नय का मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मो को करता है और उन्ही अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को भोगता है ।

व्यवहार की मान्यता मे दोप–

जदि पोंग्गलकम्ममिण कुव्वदि त चेव वेदयदि आदा।
दोकिरियावदिरित्तो पसज्जदे सो[1] जिणावमद ।। ३-१७-८५

सान्वय अर्थ – (जदि) यदि (आदा) आत्मा (इण) इस (पोंग्गलकम्म) पुद्गल कर्म को (कुव्वदि) करता है (च) और (त एव) उसी को (वेदयदि) भोगता है तो (दोकिरियावदिरित्तो) दो क्रियाओ से अभिन्न होने का जीव अपनी तथा पुद्गल की क्रिया का कर्त्ता और भोक्ता होने से दोनो से अभिन्नता का (पसज्जदे) प्रसंग आता है (सो जिणावमद) ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के मत के विपरीत है।

अर्थ – यदि आत्मा इम पुद्गल कर्म को करता है और उसी को भोगता है तो दो क्रियाओ मे अभिन्न होने का प्रसग आता है। ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के मत के विपरीत है।

विशेपार्थ–*क्रिया वस्तुत परिणाम है और परिणाम क्रिया क कर्त्ता परिणामी मे अभिन्न होता है। जीव जिस प्रकार अपने परिणाम को करता है और उसी को भोगता है, उसी प्रकार यदि वह पुद्गलकर्म को करे और उसी को भोगे तो जीव अपनी और पुद्गल की–दोनों की–क्रियाओं से अभिन्न हो जाएगा। दो द्रव्यों की क्रिया एक द्रव्य करता है, ऐसा मानना जिनेन्द्रदेव के सिद्धान्त के विरुद्ध है।*

---

१ पसजदि मम्म —ता पर्यवृत्ती।

दो किरियावादी मिथ्यादृष्टि है–

जम्हा दु अत्तभाव पोंग्गलभाव च दो कुव्वति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दो किरियावादिणो होंति ॥ ३-१८-८६

सान्वय अर्थ – (जम्हा दु) क्योंकि आत्मा (अत्तभाव) आत्मा के भाव को (च) और (पोंग्गलभाव) पुद्गल के भाव-परिणाम को (दो वि) दोनो को (कुव्वति) करता है (तेण दु) ऐसा कहने के कारण (दो किरियावादिणो) दो क्रियावादी–एक द्रव्य द्वारा दो द्रव्यो के परिणाम किये जाते है ऐसा मानने वाले (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (होंति) होते है।

अर्थ – क्योकि आत्मा आत्मा के भाव को और पुद्गल के भाव (परिणाम) को–दोनो को–करता है। ऐसा मानने के कारण दो किरियावादी (एक द्रव्य द्वारा दो द्रव्यो के परिणाम किये जाते है ऐसा मानने वाले) मिथ्यादृष्टि होते है।

मिथ्यात्वादि भाव दो प्रकार के हैं—

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीव तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा ।। ३-१६-८७

सान्वय अर्थ – (पुण) पुनः (मिच्छत्त) मिथ्यात्व (दुविह) दो प्रकार का है (जीवमजीव) जीव मिथ्यात्व और अजीव मिथ्यात्व (तहेव) इसी प्रकार (अण्णाण) अज्ञान (अविरदि) अविरति (जोगो) योग (मोहो) मोह (कोहादीया) क्रोध आदिक (इमे भावा) ये सभी भाव जीव-अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं ।

अर्थ – पुन. मिथ्यात्व दो प्रकार का है—जीवमिथ्यात्व और अजीवमिथ्यात्व। इसी प्रकार अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोध आदि कषाय—ये सभी भाव (जीव-अजीव के भेद से) दो-दो प्रकार के हैं।

अजीव और जीव मिथ्यात्वादि भाव–

पोंग्गलकम्म मिच्छ जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं ।
उवओगो अण्णाण अविरदि मिच्छ च जीवो दु ॥ ३-२०-८८

सान्वय अर्थ – जो (मिच्छ) मिथ्यात्व (जोगो) योग (अविरदि) अविरति और (अणाण) अज्ञान (अजीव) अजीव है वे (पोंग्गलकम्म) पुद्गल कर्म है (च) और जो (अण्णाण) अज्ञान (अविरदि) अविरति (मिच्छ) और मिथ्यात्व (जीवो दु) जीव है वे (उवओगो) उपयोग रूप है ।

अर्थ – जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान अजीव हैं, वे पुद्गल कर्म हैं और जो अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व जीव हैं, वे उपयोगरूप हैं।

मोहयुक्त जीव के अनादिकालीन परिणाम—

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्त अण्णाण अविरदिभावो य णादव्वो ।। ३-२१-८९

सान्वय अर्थ – (मोहजुत्तस्स) **मोह से युक्त** (उवओगस्स) **उपयोग के** (तिण्णि) **तीन** (अणाई) **अनादिकालीन** (परिणामा) **परिणाम हैं, वे** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (अण्णाण) **अज्ञान** (य अविर-दिभावो) **और अविरतिभाव** (णादव्वो) **जानने चाहिए ।**

अर्थ – मोह से युक्त उपयोग के तीन अनादिकालीन परिणाम हैं। वे (तीन परिणाम) मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिभाव जानने चाहिये ।

उपयोग विकारी भाव का कर्त्ता है--

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ।। ३-२२-९०

सान्वय अर्थ -- (एदेसु य) मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति इन तीनो का निमित्त मिलने पर भी (उवओगो) आत्मा का उपयोग (सुद्धो) यद्यपि निश्चय नय से शुद्ध (णिरजणो) निरंजन (भावो) एकभाव है, फिर भी (तिविहो) तीन प्रकार के परिणामवाला (सो) वह (उवओगो) उपयोग (ज) जिस (भाव) विकारी भाव को (करेदि) करता है (सो) वह (तस्स) उसी भाव का (कत्ता) कर्त्ता है।

अर्थ -- (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति) इन तीनो का निमित्त मिलने पर भी आत्मा का उपयोग (यद्यपि निश्चय नय से) शुद्ध, निरजन और एकभाव है, फिर भी तीन प्रकार के परिणामवाला वह उपयोग जिस (विकारी) भाव को करता है, वह उसी भाव का कर्त्ता होता है ।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोंग्गल दव्व ।। ३-२३-९१

सान्वय अर्थ – (आदा) आत्मा (ज भाव) जिस भाव को (कुणदि) करता है (सो) वह (तस्स भावस्स) उस भाव का (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है (तम्हि) उसके कर्त्ता होने पर (पोंग्गल दव्व) पुद्गल द्रव्य (सय) स्वय (कम्मत्त) कर्मरूप (परिणमदे) परिणमित होता है ।

अर्थ – आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भाव का कर्त्ता होता है । उसके कर्त्ता होने पर पुद्गल द्रव्य स्वय कर्मरूप परिणमित होता है ।

अज्ञान से कर्मों का कर्तृत्व है–

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाण पि य परं करतो सो ।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ।। ३-२४-९२

सान्वय अर्थ – (पर) पर को (अप्पाण) अपने रूप (कुव्व) करता हुआ (य) और (अप्पाण) अपने को (पि) भी (पर) पररूप (करतो) करता हुआ (सो) वह (अण्णाणमओ) अज्ञानी (जीवो) जीव (कम्माण) कर्मों का (कारगो) कर्त्ता (होदि) होता है ।

अर्थ – पर को अपने रूप करता हुआ और अपने को पररूप करता हुआ वह अज्ञानी जीव कर्मों का कर्त्ता होता है ।

ज्ञानी कर्मों का कर्त्ता नही होता–

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य पर अकुव्वतो ।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि ।। ३-२५-९३

सान्वय अर्थ – जो (पर) पर को (अप्पाणं) अपने रूप (अकुव्व) नहीं करता (य) और जो (अप्पाण पि) अपने को भी (पर) पर रूप (अकुव्वतो) नहीं करता (सो) वह (णाणमओ) ज्ञानमय–ज्ञानी (जीवो) जीव (कम्माण) कर्मो का (अकारगो) अकर्त्ता (होदि) होता है ।

अर्थ – जो पर को अपने रूप नही करता और जो अपने को भी पर रूप नही करता, वह ज्ञानी जीव कर्मों का कर्त्ता नही होता ।

अज्ञानी अपने विकारी भाव का कर्त्ता है—

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोहं ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ।। ३-२६-९४

सान्वय अर्थ – (एस) यह (तिविहो) तीन प्रकार का (उवओगो) उपयोग (कोहोह) मैं क्रोध हूँ ऐसा (अप्पवियप्प) आत्मविकल्प (करेदि) करता है (सो) वह (तस्स उवओगस्स) उस उपयोग रूप (अत्तभावस्स) अपने भाव का (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है।

अर्थ – यह (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति रूप) तीन प्रकार का उपयोग 'मैं क्रोध हूँ' ऐसा आत्मविकल्प करता है। वह आत्मा उस उपयोग रूप अपने भाव का कर्त्ता होता है।

इसी वात को विशेष रूप से कहते हैं–

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ।। ३-२७-९५

सान्वय अर्थ – (एस) यह (तिविहो) तीन प्रकार का (उवओगो) उपयोग (धम्मादि) मैं धर्मादिक हूँ ऐसा (अप्पवियप्प) आत्म-विकल्प (करेदि) करता है (सो) वह आत्मा (तस्स) उस (उव-ओगस्स) उपयोगरूप (अत्तभावस्स) अपने भाव का (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है।

अर्थ – वह (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरतिरूप) तीन प्रकार का उपयोग 'मैं धर्मादिक हूँ' ऐसा आत्मविकल्प करता है । वह आत्मा उस उपयोगरूप अपने भाव का कर्त्ता होता है ।

कर्त्तृत्व का मूल अज्ञान है–

एव पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाणं अवि य पर करेदि अण्णाणभावेण ।। ३-२८-९६

सान्वय अर्थ – (एव) इस प्रकार (मदबुद्धीओ) मन्दबुद्धि (अण्णाणभावेण) अज्ञान भाव से (पराणि दव्वाणि) पर द्रव्यो को (अप्पय) अपने रूप (कुणदि) करता है (य) और (अप्पाण अवि) अपने को भी (पर) पररूप (करेदि) करता है ।

अर्थ – इस प्रकार मन्दबुद्धि (अज्ञानी) अज्ञानभाव से परद्रव्यो को अपने रूप करता है और अपने को भी पररूप करता है ।

ज्ञान से कर्त्तृत्व का त्याग होता है–

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो ।
एवं खलु जो जाणदि सो मुञ्चदि सव्वकत्तित्तं ।। ३-२९-९७

सान्वय अर्थ – (एदेण दु) इस कारण से (णिच्छयविदूहि) निश्चय के ज्ञाताओ ने (सो आदा) वह आत्मा (कत्ता) कर्त्ता (परिकहिदो) कहा है (एव) इस प्रकार (खलु) निश्चय ही (जो) जो (जाणदि) जानता है (सो) वह (सव्वकत्तित्त) सब कर्त्तृत्व को (मुञ्चदि) छोड़ देता है ।

अर्थ – इस पूर्वोक्त कारण मे निश्चय के ज्ञाताओ ने वह कर्त्ता कहा है । इस प्रकार वस्तुत जो जानता है, वह सब कर्त्तृत्व को छोड देता है ।

व्यवहारी जनो का व्यामोह–

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरघादिदव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ।। ३-३०-६८

सान्वय अर्थ – (ववहारेण दु) व्यवहार से–व्यवहारी जन ऐसा मानते है कि (इह) जगत में (आदा) आत्मा (घडपडरघादि दव्वाणि) घट, पट रथ आदि वस्तुओ को (य) और (करणाणि) इन्द्रियो को (विविहाणि) अनेक प्रकार के (कम्माणि) क्रोधादि कर्मो को (य) और (णोकम्माणि) शरीरादि नोकर्मो को (करेदि) करता है ।

अर्थ – व्यवहार मे (व्यवहारी जन ऐसा मानते है कि) जगत मे आत्मा घट-पट-रथ आदि वस्तुओ को और इन्द्रियो को, अनेक प्रकार के क्रोधादि कर्मों को और शरीरादि नोकर्मो को करता है ।

व्याप्य-व्यापक भाव से आत्मा कर्त्ता नही है–

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ।। ३-३१-९९

सान्वय अर्थ – (जदि य) **यदि** (सो) **वह-आत्मा** (परदव्वाणि) **परद्रव्यो को** (करेज्ज) **करे तो** (णियमेण) **नियम से** (तम्मओ) **तन्मय-परद्रव्यमय** (होज्ज) **हो जाय** (जम्हा) **क्योकि** (तम्मओ ण) **तन्मय नहीं होता** (तेण) **इस कारण** (सो) **वह** (तेसि) **उनका** (कत्ता) **कर्त्ता** (ण हवदि) **नहीं है ।**

अर्थ – यदि वह (आत्मा) परद्रव्यो को करें तो नियम से वह तन्मय (परद्रव्य-मय) हो जाए, क्योकि वह तन्मय नही होता, इस कारण वह कर्त्ता नहीं है ।

निमित्तनैमित्तिक भाव से भी जीव कर्त्ता नही है–

जीवो ण करेदि घड णेव पड णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसि हवदि कत्ता ।। ३-३२-१००

सान्वय अर्थ – (जीवो) जीव (घड) घट को (ण) नहीं (करेदि) करता (णेव) न ही (पड) पट को करता है (णेव) न ही (सेसगे दव्वे) शेष द्रव्यो को करता है (जोगुवओगा य) जीव के योग और उपयोग (उप्पादगा) उत्पादक–घटादि के उत्पन्न करने में निमित्त हैं (तेसि) उन योग और उपयोग का (कत्ता) कर्त्ता (हवदि) जीव होता है ।

अर्थ – जीव घट को नही करता, न ही पट को करता है, न ही शेष द्रव्यो को करता है । जीव के योग और उपयोग घटादि के उत्पन्न करने मे निमित्त है । उन योग और उपयोग का कर्त्ता जीव है ।

ज्ञानी ज्ञान का ही कर्त्ता है–

जे पोंग्गलदव्वाणं परिणामा होति णाण आवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ।। ३-३३-१०१

सान्वय अर्थ – (जे) **जो** (णाणआवरणा) **ज्ञानावरणादिक** (पोंग्गलदव्वाण) **पुद्गल-द्रव्यो के** (परिणामा) **परिणाम** (होति) **है** (ताणि) **उन्हें** (जो आदा) **जो आत्मा** (ण) **नहीं** (करेदि) **करता, परन्तु** (जाणदि) **जानता है** (सो) **वह** (णाणी) **ज्ञानी** (हवदि) **है ।**

अर्थ – जो ज्ञानावरणादिक पुद्गल द्रव्यो के परिणाम हैं, उन्हें जो आत्मा नही करता, (परन्तु जो) जानता है, वह ज्ञानी है ।

अज्ञानी अज्ञान भावो का कर्त्ता है—

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
त तस्स होदि कम्म सो तस्स दु वेदगो अप्पा ।। ३-३४-१०२

सान्वय अर्थ – (आदा) आत्मा (ज) जिस (सुहमसुह) शुभ या अशुभ (भाव) भाव को (करेदि) करता है (स) वह (तस्स) उस भाव का (खलु) निश्चय ही (कत्ता) कर्त्ता होता है (त) वह भाव (तस्स) उसका (कम्म) कर्म (होदि) होता है (सो) वह (अप्पादु) आत्मा (तस्स) उस भावरूप कर्म का (वेदगो) भोक्ता होता है ।

अर्थ – आत्मा जिस शुभ या अशुभ भाव को करता है, वह उस भाव का निश्चय ही कर्त्ता होता है । वह भाव उसका कर्म होता है और वह आत्मा उस भावरूप कर्म का भोक्ता होता है ।

कोई द्रव्य परभाव को नहीं करता–

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसकतो किह त परिणामए दव्वं ।। ३-३५-१०३

सान्वय अर्थ – (जो) जो वस्तु (जम्हि) जिस (गुणे) गुण में और (दव्वे) द्रव्य में वर्तती है (सो) वह (अण्णम्हि दु) अन्य (दव्वे) द्रव्य, गुण में (ण सकमदि) संक्रमण नहीं करती (अण्णमसकतो) अन्य में संक्रमण न करती हुई (सो) वह वस्तु (त दव्व) उस द्रव्य को (किह) किस प्रकार (परिणामए) परिणमन करा सकती है।

अर्थ – जो वस्तु जिस द्रव्य और गुण मे (वर्तती है), वह अन्य द्रव्य (और गुण) मे सक्रमण नही करती। अन्य मे सक्रमण न करती हुई वह वस्तु उस (अन्य) द्रव्य को किस प्रकार परिणमन करा सकती है।

आत्मा पुद्गल कर्मो का कर्त्ता नही है–

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोंग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
त उहयमकुव्वतो तम्हि कह तस्स सो कत्ता ।। ३-३६-१०४

मान्वय अर्थ – (आदा) आत्मा (पोंग्गलमयम्हि) पुद्गलमय (कम्मम्हि) कर्म में (दव्वगुणस्स य) अपने द्रव्य और गुण को (ण कुणदि) नहीं करता (तम्हि) उसमें (त उहय) द्रव्य और गुण दोनो को (अकुव्वतो) न करता हुआ (सो) वह (तस्स) उस पुद्गल कर्म का (कत्ता) कर्त्ता (कह) किस प्रकार हो सकता है।

अर्थ – आत्मा पुद्गलमय कर्म मे (अपने) द्रव्य और गुण का (सक्रमण) नही करता । उसमे द्रव्य और गुण दोनो का (सक्रमण) न करता हुआ वह (आत्मा) उस पुद्गल कर्म का कर्त्ता किम प्रकार हो सकता है ।

आत्मा उपचार से पुद्गल कर्म का कर्ता कहा है—

जीवम्हि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण ॥ ३-३७-१०५

सान्वय अर्थ – (जीवम्हि) जीव के (हेदुभूदे) निमित्तभूत होने पर (वधम्स दु) ज्ञानावरणादि वन्ध का (परिणामं) परिणमन (पम्सिदूण) देखकर (जीवेण) जीव ने (कम्म) कर्म (कदं) किया, यह (उवयारमेत्तेण) उपचारमात्र से (भण्णदि) कहा जाता है।

अर्थ—जीव के निमित्तभूत होने पर ज्ञानावरणादि वन्ध का परिणमन देखकर 'जीव ने कर्म किया' यह उपचार मात्र से कहा जाता है।

व्यवहार से कर्मों का कर्तृत्व–

जोधेहि कदे जुद्धे रायेण कदं त्ति जम्पदे लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ।। ३-३८-१०६

सान्वय अर्थ – (जोधेहि) योद्धाओ के द्वारा (जुद्धे कदे) युद्ध करने पर (रायेण) राजा ने (कद) युद्ध किया (त्ति) इस प्रकार (लोगो) लोग (जम्पदे) कहते है (तह) उसी प्रकार (णाणावरणादि) ज्ञानावरणादि कर्म (जीवेण) जीव ने (कद) किया (ववहारेण) यह व्यवहार से कहा जाता है।

अर्थ – योद्धाओ के द्वारा युद्ध करने पर 'राजा ने युद्ध किया' इस प्रकार लोग कहते हैं । उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीव ने किया, यह व्यवहार से कहा जाता है ।

व्यवहार से आत्मा पुद्गल का कर्त्ता है-

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।
आदा पोंग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥ ३-३९-१०७

सान्वय अर्थ – (आदा) आत्मा (पोंग्गदव्व) पुद्गल द्रव्य को (उप्पादेदि) उपजाता है (करेदि य) करता है (वधदि) बाँधता है (परिणामएदि) परिणमन कराता है (य) और (गिण्हदि) ग्रहण करता है—यह (ववहारणयस्म) व्यवहार नय का (वत्तव्व) कथन है।

अर्थ – आत्मा पुद्गल द्रव्य को उपजाता है, करता है, बाँधता है, परिणमन कराता है और ग्रहण करता है, यह व्यवहार नय का कथन है ।

दृष्टान्तपूर्वक व्यवहार का कथन—

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ।। ३-४०-१०८

सान्वय अर्थ — (जह) जैसे (राया) राजा (दोसगुणुप्पादगो) प्रजा में दोष और गुणो का उत्पन्न करने वाला है (त्ति) यह (ववहारा) व्यवहार से (आलविदो) कहा जाता है (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (ववहारा) व्यवहार से, (दव्वगुणुप्पादगो) पुद्-गल द्रव्य के द्रव्य और गुणो का उत्पादक (भणिदो) कहा गया है।

अर्थ — जैसे राजा (प्रजा मे) दोप और गुणो का उत्पन्न करने वाला है, यह व्यवहार से कहा जाता है, उमी प्रकार जीव व्यवहार से (पुद्गल द्रव्य के) द्रव्य और गुणो का उत्पादक कहा गया है ।

कर्म-बन्ध के चार मूल कारण—

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो ।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ।। ३-४१-१०९

तेंसि पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो ।
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमतं ।। ३-४२-११०

सान्वय अर्थ – (खलु) **वास्तव में** (चउरो) **चार** (सामण्ण-पच्चया) **सामान्य-मूल प्रत्यय-आस्रव** (बधकत्तारो) **बन्ध के कर्त्ता** (भण्णति) **कहे जाते हैं—वे** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (अविरमण) **अविरति** (कसायजोगा य) **कषाय और योग** (बोद्धव्वा) **जानने चाहिए** (पुणो वि य) **और फिर** (तेंसि) **उनका** (तेरसवियप्पो) **तेरह प्रकार का** (भेदो दु) **भेद** (भणिदो) **कहा गया है—वे** (मिच्छादिट्ठी) **मिथ्यादृष्टि से लेकर** (सजोगिस्स) **सयोगी केवली के** (चरमत जाव) **चरम समय पर्यन्त है ।**

अर्थ – वास्तव मे चार सामान्य प्रत्यय (मूलप्रत्यय-आस्रव) वन्ध के कर्त्ता कहे जाते हैं। (वे) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग जानने चाहिये और फिर उनका तेरह प्रकार का भेद कहा गया है। (वे भेद) मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी केवली के चरम समय पर्यन्त हैं।

प्रत्यय कर्मों के कर्त्ता हैं–

एदे अचेदणा खलु पोंग्गलकम्मुदयसभवा जम्हा ।
ते जदि करति कम्म ण वि तेंसि वेदगो आदा ।। ३-४३-१११

गुणसण्णिदा दु एदे कम्म कुव्वति पच्चया जम्हा ।
तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ।। ३-४४-११२

सान्वय अर्थ – (एदे) ये–मिथ्यात्वादि प्रत्यय (खलु) निश्चय से (अचेदणा) अचेतन हैं (जम्हा) क्योंकि (पोंग्गलकम्मुदयसभवा) ये पुद्गल कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं (जदि) यदि (ते) वे प्रत्यय (कम्म) कर्म (करति) करते हैं तो (तेसि) उन कर्मों का (वेदगो वि) भोक्ता भी (आदा) आत्मा (ण) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (एदे) ये (गुणसण्णिदा दु) गुणस्थान नामक (पच्चया) प्रत्यय (कम्म) कर्म (कुव्वति) करते हैं (तम्हा) इसलिए (जीवो) जीव (अकत्ता) कर्मों का कर्त्ता नहीं है (य) और (गुणा) गुणस्थान नामक प्रत्यय ही (कम्माणि) कर्मों को (कुव्वति) करते हैं।

अर्थ – ये मिथ्यात्वादि प्रत्यय निश्चय से अचेतन हैं क्योकि ये पुद्गल कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं। यदि वे प्रत्यय कर्म करते हैं तो करें, उन कर्मो का भोक्ता भी आत्मा नही है, क्योंकि ये गुणस्थान नामक प्रत्यय कर्म करते हैं, इसलिए (निश्चय नय से) जीव कर्मो का कर्त्ता नही है और गुणस्थान नामक प्रत्यय ही कर्मो को करते हैं ।

जीव और प्रत्यय एक नही है–

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो ।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण ॥३-४५-११३

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो ।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माण ॥ ३-४६-११४

अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा ।
जह कोहो तह पच्चय कम्म णोकम्ममवि अण्ण ॥ ३-४७-११५

सान्वय अर्थ – (जह) जैसे (जीवस्स) जीव के (अणण्णुवओगो) ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न है (तह) उसी प्रकार (जदि) यदि (कोहो वि) क्रोध भी (अणण्णो) जीव से अभिन्न हो तो (एव) इस प्रकार (जीवस्साजीवस्स य) जीव और अजीव का (अणण्णत्त) अनन्यत्व (आवण्ण) प्राप्त हो गया (एव च) और ऐसा होने पर (इह) इस लोक में (जो दु) जो (जीवो) जीव है (सो एव दु) वही (णियमदो) नियम से (तहा) उसी प्रकार (अजीवो) अजीव होगा (पच्चयणोकम्मकम्माण) प्रत्यय, नोकर्म और कर्मों के (एयत्ते) एकत्व में भी (अय दोमो) यही दोष आता है (अह पुण) अथवा–इस दोष के भय से ऐसी मानो कि (कोहो) क्रोध (अण्णो) अन्य है और (उवओगप्पगो) उपयोग स्वरूप (चेदा) आत्मा (अण्ण) अन्य है–तो (जह) जैसे (कोहो) क्रोध-अन्य है (तह) उसी प्रकार (पच्चय) प्रत्यय (कम्म) कर्म और (णोकम्ममवि) नोकर्म भी (अण्ण) अन्य है।

अर्थ – जैमे जीव के ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न हैं, उसी प्रकार यदि क्रोध भी जीव से अनन्य हो तो इस प्रकार जीव और अजीव का अनन्यत्व (एकत्व) प्राप्त हो गया, और ऐसा होने पर इस लोक मे जो जीव है, वही नियम से उसी प्रकार अजीव होगा। प्रत्यय, कर्म और नोकर्म के एकत्व मे भी यही दोप आता, अथवा (इस दोप के भय मे ऐसा मानो कि) क्रोध अन्य हैं और उपयोगस्वरूप आत्मा अन्य है तो जैसे क्रोध अन्य है, उमी प्रकार प्रत्यय, कर्म और नोकर्म भी अन्य है।

साख्यमत का निराकरण–

जीवे ण सयं बद्ध ण सय परिणमदि कम्मभावेण ।
जदि पोॅग्गलदव्वमिण अप्परिणामी तदा होदि ।। ३-४८-११६

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमतीसु कम्मभावेण ।
ससारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ।। ३-४९-११७

जीवो परिणामयदे पोॅग्गलदव्वाणि कम्मभावेण ।
ते सयमपरिणमते कह तु परिणामयदि चेदा ।। ३-५०-११८

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोॅग्गलदव्व ।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदिमिच्छा ।। ३-५१-११९

णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चिय होदि पोॅग्गल दव्व ।
तह तं णाणावरणाइपरिणद मुणसु तच्चेव ।। ३-५२-१२०

सान्वय अर्थ – (इण पोॅग्गलदव्व) यह पुद्गल द्रव्य (जीवे) जीव में (सय) स्वयं (ण वद्ध) नहीं बँधा है और (कम्मभावेण) कर्मभाव से (सय) स्वयं (ण परिणमदि) परिणमन नहीं करता है (जदि) यदि ऐसा मानो (तदा) तव तो वह (अप्परिणामी) अपरिणामी (होदि) हो जाएगा (य) अथवा (कम्मइयवग्गणासु) कार्मणवर्गणाएँ (कम्मभावेण) कर्मभाव से द्रव्यकर्मरूप से (अपरिणमतीसु) परिणमन नहीं करतीं, ऐसा मानो तो (ससारस्स) ससार के (अभावो) अभाव का (पसज्जदे) प्रसग आ जाएगा (वा) अथवा (सखसमओ) साख्य मत का प्रसग आ जाएगा ।

(जीवो) जीव (पोॅग्गलदव्वाणि) पुद्गल द्रव्यो को (कम्मभावेण) कर्मभाव से (परिणामयदे) परिणमन कराता है, यदि ऐसा मानो तो (चेदा) जीव उन्हें (कह तु) किस प्रकार (परिणामयदि)

परिणमन करा सकता है, जबकि (ते) वे पुद्गल द्रव्य (सयमपरिणमते) स्वयं परिणमन नहीं करते (अह) अथवा यह मानो कि (पोंग्गल दव्व) पुद्गल द्रव्य (सयमेव हि) स्वय ही (कम्मभावेण) कर्मभाव से (परिणमदि) परिणमन करता है तो (जीवो) जीव (कम्म) कर्मरूप पुद्गल को (कम्मत्त) कर्मरूप (परिणामयदे) परिणमन कराता है (इदि) यह कहना (मिच्छा) मिथ्या सिद्ध होता है, इसलिए (णियमा) जैसे नियम से (कम्मपरिणद) कर्मरूप-कर्त्ता के कार्यरूप से परिणत (पोंग्गलदव्व) पुद्गल द्रव्य (कम्म चिय) कर्म ही (होदि) है (तह) इसी प्रकार (णाणावरणाइपरिणद) ज्ञानावरणादि रूप परिणमित (त) पुद्गल द्रव्य (तच्चेव) ज्ञानावरणादि ही है (मुणसु) ऐसा जानो।

अर्थ – यह पुद्गल द्रव्य जीव मे स्वय नही बँधा है और कर्मभाव मे स्वय परिणमन नही करता है–यदि ऐसा मानो, तब तो वह अपरिणामी हो जाएगा। अथवा कार्मण वर्गणाएँ द्रव्यकर्मरूप से परिणमन नही करती–ऐसा मानो तो ससार के अभाव का प्रसग आ जाएगा अथवा साख्यमत का प्रसग आ जाएगा।

जीव पुद्गल द्रव्यो को कर्मभाव से परिणमन कराता है–यदि ऐसा मानो तो जीव उन्हें किस प्रकार परिणमन करा सकता है, जबकि वे पुद्गल द्रव्य स्वय परिणमन नही करते, अथवा यह मानो कि पुद्गल द्रव्य स्वय ही कर्मभाव से परिणमन करता है तो जीव कर्मरूप पुद्गल को कर्मरूप परिणमन कराता है–यह कहना मिथ्या सिद्ध होता है। इसलिए जैसे नियम से कर्मरूप (कर्त्ता के कार्य-रूप मे) परिणत पुद्गल द्रव्य कर्म ही है, इसी प्रकार ज्ञानावरणादि रूप परिणमित पुद्गल द्रव्य ज्ञानावरणादि ही है, ऐसा जानो।

साख्यमतानुयायी शिष्य को सबोधन–

ण सय वद्धो कम्मे ण सय परिणमदि कोहमादीहिं ।
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ।। ३-५३-१२१

अपरिणमंतम्हि सय जीवे कोहादिएहि भावेहिं ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ।। ३-५४-१२२

पोंग्गलकम्मं कोहो जीव परिणामएदि कोहत्तं ।
तं सयमपरिणमत किह परिणामयदि कोहत्त ।। ३-५५-१२३

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी ।
कोहो परिणामयदे जीव कोहत्तमिदि मिच्छा ।। ३-५६-१२४

कोहवजुत्तो कोहो माणवजुत्तो य माणमेवादा ।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ।। ३-५७-१२५

सान्वय अर्थ – (जदि) यदि (तुज्झ) तेरी ऐसी मान्यता है कि (एस) यह (जीवो) जीव (कम्मे) कर्म में (सय) स्वयं (वद्धो ण), वँधा नहीं है–और (कोहमादीहि) क्रोधादि भावो से (सय) स्वयं (ण परिणमदि) परिणमन नहीं करता है (तदा) तव तो वह (अप्परिणामी) अपरिणामी (होदि) सिद्ध होता है–और (कोहा-दिएहि) क्रोधादि (भावेहि) भावरूप से (जीवे) जीव के (सय) स्वयं (अपरिणमतम्हि) परिणमन न करने पर (ससारस्स) ससार के (अभावो) अभाव का (पसज्जदे) प्रसंग आ जाएगा (वा) अथवा (सखसमओ) सांख्यमत का प्रसंग आ जाएगा ।

यदि यह कहो कि (पोंग्गलकम्म) पुद्गल कर्मरूप (कोहो) क्रोध (जीव) जीव को (कोहत्त) क्रोधभावरूप (परिणामएदि) परिण-माता है, तो (सयमपरिणमत त) स्वय परिणमन न करने वाले जीव

को (कोहत्त) क्रोधरूप (किह) किस प्रकार (परिणामयदि) परिणमन करा सकता है ।

(अह) अथवा (अप्पा) आत्मा (सय) स्वय (कोहभावेण) क्रोधभाव से (परिणमदि) परिणमन करता है (दे) यदि तेरी (एस वुद्धी) ऐसी मान्यता है तो (कोहो) क्रोध (जीव) जीव को (कोहत्त) क्रोधभावरूप (परिणामयदे) परिणमन कराता है (इदि) यह कहना (मिच्छा) मिथ्या ठहरेगा ।

अत· सिद्ध हुआ कि (कोहवजुत्तो) क्रोध में उपयुक्त–जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणमित हुआ है ऐसा–(आदा) आत्मा (कोहो) क्रोध ही है (य) और (माणवजुत्तो) मान में उपयुक्त आत्मा (माणमेव) मान ही है (माउवजुत्तो) माया में उपयुक्त आत्मा (माया) माया है–और (लोहुवजुत्तो) लोभ में उपयुक्त आत्मा (लोहो) लोभ (हवदि) है ।

अर्थ – (साख्यमतानुयायी शिष्य के प्रति आचार्य कहते हैं कि–) यदि तेरी ऐसी मान्यता है कि यह जीव कर्म मे स्वय नही वँधा है और क्रोधादि भावो मे स्वय परिणमन नही करता है, तव तो वह अपरिणामी सिद्ध होता है (और) क्रोधादि भावरूप से जीव के स्वय परिणमन न करने पर ससार के अभाव का प्रसग आ जाएगा अथवा साख्यमत का प्रसग आ जाएगा ।

(यदि यह कहो कि) पुद्गल कर्मरूप क्रोध जीव को क्रोधभावरूप परिणमाता है तो स्वय परिणमन न करने वाले जीव को क्रोधरूप किस प्रकार परिणमन करा सकता है ।

अथवा आत्मा स्वय क्रोधभाव से परिणमन करता है, यदि तेरी ऐसी मान्यता है तो क्रोध जीव को क्रोधभाव रूप परिणमन कराता है यह कहना मिथ्या ठहरेगा ।

(अत· सिद्ध हुआ कि) क्रोध मे उपयुक्त (जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणमित हुआ है ऐसा) आत्मा क्रोध ही है, मान मे उपयुक्त आत्मा मान ही है, माया मे उपयुक्त आत्मा माया है और लोभ मे उपयुक्त आत्मा लोभ है।

आत्मा अपने भावो का कर्त्ता है–

ज कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ।। ३-५८-१२६

सान्वय अर्थ – (आदा) आत्मा (ज भाव) जिस भाव को (कुणदि) करता है (सो) वह (तस्स कम्मस्स) उस भावकर्म का (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है (णाणिस्स दु) ज्ञानी के तो (णाणमओ) ज्ञानमय भाव होता है–और (अणाणिस्स) अज्ञानी के (अण्णाणमओ) अज्ञानमय भाव होता है ।

अर्थ – आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावकर्म का कर्त्ता होता है । ज्ञानी के तो ज्ञानमय भाव होता है और अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होता है।

ज्ञान और अज्ञानमय भाव का कार्य—

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि ।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि ।। ३-५९-१२७

सान्वय अर्थ – (अणाणिणो) अज्ञानी के (अण्णाणमओ) अज्ञानमय (भावो) भाव होता है (तेण) इस कारण वह (कम्माणि) कर्मों को (कुणदि) करता है (णाणिस्स दु) और ज्ञानी के तो (णाणमओ) ज्ञानमय भाव होता है (तम्हा दु) इस कारण वह (कम्माणि) कर्मो को (ण) नहीं (कुणदि) करता है ।

अर्थ – अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होता है, इस कारण वह कर्मों को करता है, और ज्ञानी के तो ज्ञानमय भाव होता है, इसी कारण वह कर्मों को नही करता है ।

ज्ञानी के सब भाव ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय होते है–

णाणमया भावादो णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ।। ३-६०-१२८

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ।। ३-६१-१२९

सान्वय अर्थ – (जम्हा) **क्योंकि** (णाणमया भावादो) **ज्ञानमय भाव से** (णाणमओ) **ज्ञानमय** (चेव) **ही** (भावो) **भाव** (जायदे) **उत्पन्न होता है** (तम्हा) **इस कारण** (णाणिस्स) **ज्ञानी के** (सव्वे) **सब** (भावा) **भाव** (हु) **वास्तव में** (णाणमया) **ज्ञानमय होते हैं** (च) **और** (जम्हा) **क्योंकि** (अण्णाणमया भावा) **अज्ञानमय भाव से** (अण्णाणो एव) **अज्ञानमय ही** (भावो) **भाव** (जायदे) **उत्पन्न होता है** (तम्हा) **इस कारण** (अणाणिस्स) **अज्ञानी के** (भावा) **सब भाव** (अण्णाणमया) **होते हैं ।**

अर्थ – क्योंकि ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इस कारण ज्ञानी के सब भाव वास्तव मे ज्ञानमय होते हैं, क्योंकि अज्ञानमय भाव से अज्ञानमय ही भाव उत्पन्न होता है, इस कारण अज्ञानी के सब भाव अज्ञानमय होते है।

दृष्टान्त द्वारा पूर्वोक्त का स्पष्टीकरण—

कणयमया भावादो जायते कुंडलादयो भावा ।
अयमयया भावादो जह जायते दु कडयादी ।। ३-६२-१३०

अण्णाणमया भावा अणाणिणो वहुविहा वि जायते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ।। ३-६३-१३१

सान्वय अर्थ – (जहा) जैसे (कणयमया भावादो) स्वर्णमय भाव से (कुडलादयो भावा) कुण्डल आदि भाव (जायते) उत्पन्न होते हैं (दु) तथा (अयमयया भावादो) लोहमय भाव से (कडयादी) कडा आदि भाव (जायते) उत्पन्न होते हैं (तहा) इसी प्रकार (अणाणिणो) अज्ञानी के अज्ञानमय भाव से (वहुविहा वि) अनेक प्रकार के (अण्णाणमया भावा) अज्ञानमय भाव (जायते) उत्पन्न होते है (दु) तथा (णाणिस्स) ज्ञानी के ज्ञानमय भाव से (सव्वे) समस्त (णाणमया भावा) ज्ञानमय भाव (होंति) होते हैं।

अर्थ – जैसे स्वर्णमय भाव से कुण्डल आदि भाव उत्पन्न होते हैं तथा लोहमय भाव से कडा आदि भाव उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार अज्ञानी के (अज्ञानमय भाव से) अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं तथा ज्ञानी के (ज्ञानमय भाव से) समस्त ज्ञानमय भाव होते हैं।

कर्म-बन्ध के चार कारण–

अण्णाणस्स दु उदओ जा जीवाण अतच्चउवलद्धी ।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्त ।। ३-६४-१३२

उदओ असजमस्स दु ज जीवाण हवेइ अविरमण ।
जो दु कलुसोवओगो जीवाण सो कसाउदओ ।। ३-६५-१३३

तं जाण जोगउदय जो जीवाण तु चिट्ठउच्छाहो ।
सोहृणमसोहृण वा कादव्वो विरदिभावो वा ।। ३-६६-१३४

सान्वय अर्थ – (जीवाण) जीवो के (जा) जो (अतच्चउवलद्धी) विपरीत ज्ञान-वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ ज्ञान है (दु) वह तो (अण्णाणस्स) अज्ञान का (उदओ) उदय है (दु) तथा (जीवस्स) जीव के (असद्दहाणत्त) जो तत्त्व का अश्रद्धान है–वह (मिच्छत्तस्स) मिथ्यात्व का (उदओ) उदय है (दु) और (जीवाण) जीवो के (ज) जो (अविरमण) अत्यागभाव–विषयो से विरत न होना है–वह (असजमस्स) असयम का (उदओ) उदय (हवेइ) है (दु) और (जीवाण) जीवो के (जो) जो (कलुसोवओगो) मलिन उपयोग क्रोधादि कषायरूप उपयोग है (सो) वह (कसाउदओ) कषाय का उदय है (तु) तथा (जीवाण) जीवो के (जो) जो (सोहृणमसोहृण वा) शुभरूप या अशुभरूप (कादव्वो विरदिभावो वा) प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिरूप (चिट्ठउच्छाहो) मन, वचन, काय के व्यापार में उत्साह है (त) उसे (जोगउदय) योग का उदय (जाण) जानो ।

अर्थ – जीवो के जो विपरीत ज्ञान (वस्तु-स्वरूप का अयथार्थ ज्ञान) है, वह तो अज्ञान का उदय है, तथा जीव के तत्त्व का अश्रद्धान है, वह मिथ्यात्व का उदय है, और जीवो के जो अत्यागभाव (विषयो से विरत न होना) है, वह असयम का उदय है, और जीवो के जो मलिन उपयोग (क्रोधादि कषाय रूप उपयोग) है, वह कषाय का उदय है, तथा जीवो के जो शुभरूप या अशुभरूप, प्रवृत्तिरूप अथवा निवृत्तिरूप मन, वचन, काय के व्यापार मे उत्साह है, उसे योग का उदय जानो ।

द्रव्यकर्म और भावकर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध–

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागद ज तु ।
परिणमदे अट्ठविह णाणावरणादि भावेहिं ।। ३-६७-१३५

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागद जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ।। ३-६८-१३६

सान्वय अर्थ – (एदेसु हेदुभूदेसु) इन मिथ्यात्व आदि उदयो के हेतुभूत होने पर (कम्मइयवग्गणागद) कार्मणवर्गणाओ के रूप में आया हुआ (ज तु) जो पुद्गल द्रव्य है वह (णाणावरणादि भावेहि) ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म के रूप में (अट्ठविह) आठ प्रकार (परिणमदे) परिणमन करता है (त कम्मइयवग्गणागद) वह कार्मण वर्गणागत पुद्गलद्रव्य (जइया) जब (खलु) वास्तव में (जीवणिवद्ध) जीव के साथ बँधता है (तइया दु) उस काल में (जीवो) जीव (परिणामभावाण) अपने अज्ञानमय परिणामरूप भावो का (हेदू) हेतु (होदि) होता है ।

अर्थ – इन मिथ्यात्व आदि उदयो के हेतुभूत होने पर कार्मण वर्गणाओ के रूप मे आया हुआ जो पुद्गल द्रव्य है, वह ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्म के रूप मे आठ प्रकार परिणमन करता है । वह कार्मणवर्गणागत पुद्गल द्रव्य जब वास्तव मे जीव के साथ बँधता है, उस काल मे जीव अपने अज्ञानमय परिणामरूप भावो का कारण होता है ।

जीव का परिणाम पुद्गल द्रव्य से भिन्न है–

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी ।
एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिभावण्णा ।। ३-६९-१३७

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं ।
ता कम्मोदयहेदूहि विणा जीवस्स परिणामो ।। ३-७०-१३८

सान्वय अर्थ – यदि (जीवस्स दु) जीव के (कम्मेण य सह) पुद्गल कर्म के साथ ही (रागादी परिणामा दु) रागादि परिणाम (होंति) होते हैं (एवं) इस प्रकार तो (जीवो कम्मं च) जीव और कर्म (दो वि) दोनों ही (रागादिभावण्णा) रागादि भाव को प्राप्त हो जाएँ (दु) किन्तु (रागमादीहिं परिणामो) रागादि अज्ञान परिणाम (एकस्स जीवस्स) एक जीव के ही (जायदि) होता है (ता) इसलिए (कम्मोदयहेदूहि विणा) कर्म के उदयरूप निमित्तकारण से पृथक् ही (जीवस्स) जीव का (परिणामो) परिणाम है।

अर्थ – यदि जीव के पुद्गल कर्म के साथ ही रागादि परिणाम होते है, ऐसा मानें तो जीव और कर्म दोनों ही रागादि भाव को प्राप्त हो जाएँ, किन्तु रागादि अज्ञान परिणाम एक जीव के ही होता है, इसलिए कर्म के उदयरूप निमित्तकारण से पृथक् ही जीव का परिणाम है।

पुद्गल द्रव्य का परिणाम जीव से भिन्न है–

जदि जीवेण सहच्चिय पोंग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो ।
एवं पोंग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा ।। ३-७१-१३९

एकस्स दु परिणामो पोंग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो ।। ३-७२-१४०

सान्वय अर्थ – (जदि) यदि (जीवेण सहच्चिय) **जीव के साथ ही** (पोंग्गलदव्वस्स) **पुद्गल द्रव्य का** (कम्मपरिणामो) **कर्मरूप परिणाम होता है** (एव) **इस प्रकार माना जाए तो** (पोंग्गलजीवा) **पुद्गल और जीव** (दो वि हु) **दोनो ही** (कम्मत्तमावण्णा) **कर्मत्व को प्राप्त हो जाएँगे** (दु) **किन्तु** (कम्मभावेण) **कर्मभाव से** (परिणामो) **परिणाम** (एकस्स पोंग्गलदव्वस्स) **एक पुद्गल द्रव्य का ही होता है** (ता) **इसलिए** (जीवभावहेदूहि विणा) **जीव के रागादि अज्ञान-परिणामरूप निमित्तकारण से पृथक् ही** (कम्मस्स) **कर्म का** (परिणामो) **परिणाम है ।**

अर्थ – यदि जीव के साथ ही पुद्गल द्रव्य का कर्मरूप परिणाम होता है, इस प्रकार माना जाए तो पुद्गल और जीव दोनो ही कर्मत्व को प्राप्त हो जाएँगे, किन्तु कर्मभाव से परिणाम एक पुद्गल द्रव्य का ही होता है, इसलिए जीव के रागादि अज्ञान परिणामरूप निमित्त कारण से पृथक् ही पुद्गल द्रव्य कर्म का परिणाम है ।

जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध–

जीवे कम्म बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिद ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्म ।। ३-७३-१४१

सान्वय अर्थ – (जीवे) जीव मे (कम्म) कर्म (वद्ध) उसके प्रदेशो के साथ बँधा हुआ है (पुट्‌ठ च) और उसे स्पर्श करता है (इदि) यह (ववहारणय भणिद) व्यवहार नय का कथन है (दु) और (जीवे) जीव में (कम्म) कर्म (अवद्धपुट्‌ठ हवदि) अबद्ध और अस्पृष्ट है (सुद्धणयस्म) यह शुद्धनय–निश्चयनय का कथन है ।

अर्थ – जीव मे कर्म (उसके प्रदेशो के साथ) वँधा हुआ है और उसे स्पर्श करता हैं, यह व्यवहार नय का कथन है और जीव मे कर्म अवद्ध और अस्पृष्ट है, यह निञ्चयनय का कथन है ।

ममयमार नयपक्षों से रहित है—

कम्मं वद्धमवद्धं जीवे एदं तु जाण णयपक्खं ।
णेयपक्खातिक्कतो[1] भण्णदि जो सो समयसारो ।। ३-७४-१४२

सान्वय अर्थ – (जीवे) जीव में (कम्म) कर्म (वद्ध) बँधा है—अथवा (अवद्ध) नहीं बँधा (एद तु) यह तो (णयपक्ख) नयपक्ष (जाण) जानो, और (जो) जो (णयपक्खातिक्कतो) नयपक्ष से अतिक्रान्त—नयपक्ष के विकल्प से रहित (भण्णदि) कहलाता है (मो) वह (ममयमारो) समयसार-निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है।

अर्थ – जीव मे कर्म बँधा है अथवा नही बँधा है, यह तो नयपक्ष जानो (इस प्रकार का कोई भी विकल्प नयपक्ष है, ऐसा जानो) और जो नयपक्ष मे अतिक्रान्त (किसी भी नयपक्ष के विकल्प मे रहित) कहलाता है, वह समय-सार (निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व) है।

---

१ पक्खातिक्कतो पुण इत्यपिपाठ ।

पक्षातिक्रान्त का स्वरूप–

दोण्हृ वि णयाण भणिद जाणदि णवरि तु समयपडिबद्धो ।
ण दु णयपक्ख गिण्हृदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो ।। ३-७५-१४३

सान्वय अर्थ – (दोण्हृ वि) दोनो ही (णयाण) नयो के (भणिद) कथन को (णवरि तु) केवल मात्र (जाणदि) जानता है– और (समयपडिवद्धो) सहज परमानन्दैक स्वभाव आत्मा का अनुभव करता हुआ और (णयपक्खपरिहीणो) समस्त नयपक्षो के विकल्प से रहित हुआ (णयपक्ख दु) किसी भी नयपक्ष को (किंचि वि) किंचिन्मात्र भी (ण गिण्हृदि) ग्रहण नहीं करता ।

अर्थ – (श्रुतज्ञानी आत्मा) दोनो ही नयो के कथन को केवलमात्र जानता है । वह (सहज परमानन्दैक स्वभाव) आत्मा का अनुभव करता हुआ और समस्त नयपक्ष के विकल्पो से रहित हुआ किसी भी नयपक्ष को किंचिन्मात्र भी ग्रहण नही करता (आत्मानुभव के समय नयो के विकल्प दूर हो जाते है)

समयसार ज्ञानदर्शन स्वरूप है—

सम्मद्दसणणाण एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ।। ३-७६-१४४

सान्वय अर्थ – (जो) जो (सव्वणयपक्खरहिदो) **समस्त नयपक्ष से रहित** (भणिदो) **कहा गया है** (सो) वह (समयसारो) **समयसार है** (एसो) **यह समयसार ही** (णवरि) **केवल** (सम्मद्दसणणाण) **सम्यग्दर्शनज्ञान** (त्ति) **इस** (ववदेस) **नाम को** (लहदि) **पाता है ।**

अर्थ—जो समस्त नयपक्ष से रहित कहा है, वह समयसार है । यह समयसार ही केवल सम्यग्दर्शनज्ञान इस नाम को पाता है (समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है ।)

इदि तिदियो कत्तिकम्माधियारो समत्तो

चउत्थो पुण्णपावाधियारो

शुभ कर्म भी ससार का कारण है–

कम्ममसुह कुसील सुहकम्मं चावि जाणह सुसील ।
किह त होदि सुसील ज ससार पवेसेदि ।। ४-१-१४५

सान्वय अर्थ – (असुह) अशुभ (कम्म) कर्म (कुसील) कुशील है (अविच) और (सुहकम्म) शुभ कर्म (सुसील) सुशील है–ऐसा (जाणह) तुम जानते हो, किन्तु (ज) जो कर्म (ससार) जीव को ससार में (पवेसेदि) प्रवेश कराता है (त) वह कर्म (किह) किस प्रकार (सुसील) सुशील (होदि) हो सकता है।

अर्थ – अशुभ कर्म कुशील (बुरा) है और शुभकर्म सुशील (अच्छा) है, ऐसा तुम जानते हो, किन्तु जो कर्म जीव को ससार मे प्रवेश कराता है, वह किस प्रकार सुशील (अच्छा) हो सकता है ?

शुभाशुभ कर्मवन्ध के कारण हैं–

सोवण्णिय पि णियल बधदि कालायसं पि जह पुरिस ।
बंधदि एव जीवं सुहमसुह वा कद कम्मं ।। ४-२-१४६

सान्वय अर्थ – (जह) **जैसे** (सोवण्णिय) **सोने की** (णियल) **बेड़ी** (पि) **भी** (पुरिम) **पुरुष को** (बधदि) **बाँधती है, और** (कालायस) **लोहे की बेड़ी** (पि) **भी बाँधती है** (एव) **इसी प्रकार** (सुहमसुह वा) **शुभ या अशुभ** (कद कम्म) **किया हुआ कर्म** (जीव) **जीव को** (वधदि) **बाँधता है ।**

अर्थ – जैसे सोने की वेडी भी पुरुष को वाँधती है और लोहे की बेडी भी वाँधती है। इसी प्रकार शुभ या अशुभ किया हुआ कर्म जीव को वाँधता है (दोनो ही वन्धनरूप हैं)।

शुभाशुभ दोनो त्याज्य हैं–

तम्हा दु कुसीलेहि य राग मा काहि मा व ससग्गि ।
साधीणो हि विणासो कुसील ससग्गि रागेण ।। ४-३-१४७

सान्वय अर्थ – (तम्हा दु) इसलिए (कुसीलेहि य) इन शुभ और अशुभ दोनो कुशीलो से (राग) राग (मा काहि) मत करो (व) तथा (ससग्गि) संसर्ग भी (मा) मत करो (हि) क्योकि (कुसील ससग्गिरागेण) कुशील के साथ ससर्ग और राग करने से (साधीणो) स्वाधीन सुख का (विणासो) विनाश होता है ।

अर्थ – इसलिए शुभ और अशुभ इन दोनो कुशीलो के साथ राग मत करो तथा ससर्ग भी मत करो, क्योकि कुशील के साथ ससर्ग और राग करने से स्वाधीन सुख का विनाश होता है ।

पूर्वोक्त का स्पष्टीकरण--

जह णाम को वि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गि रागकरण च ।। ४-४-१४८

एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादुं ।
वज्जंति परिहरंति य त संसग्गि सहावरदा ।। ४-५-१४९

सान्वय अर्थ -- (जह णाम) जैसे (को वि) कोई (पुरिसो) पुरुष (कुच्छियसील) कुत्सित स्वभाव वाले (जण) पुरुष को (वियाणित्ता) जानकर (तेण समय) उसके साथ (संसग्गि) संसर्ग (रागकरण च) और राग करना (वज्जेदि) छोड देता है (एमेव) इसी प्रकार (सहावरदा) स्वभाव में रत ज्ञानी जीव (कम्मपयडी सीलसहाव) कर्म प्रकृति के शील-स्वभाव को (कुच्छिद) कुत्सित (णादु) जानकर (हि) निश्चय ही (त संसग्गि) उसके साथ संसर्ग को (वज्जति) छोड़ देते हैं (य) और (परिहरति) राग को छोड़ देते हैं ।

अर्थ -- जैसे कोई पुरुष कुत्सित स्वभाव वाले पुरुष को जानकर उसके साथ संसर्ग और राग करना छोड देता है, इसी प्रकार स्वभाव मे रत ज्ञानी जीव कर्म-प्रकृति के शील स्वभाव को कुत्सित जानकर निश्चय ही उसके साथ संसर्ग छोड़ देते हैं और (राग को) छोड देते है ।

हे भव्य ! तू कर्मों मे राग मत कर–

रत्तो वधदि कम्मं मुञ्चदि जीवो विरागसंपण्णो ।
एसो जिणोवदेशो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ।। ४-६-१५०

मान्वय अर्थ – (रत्तो) रागी (जीवो) जीव (कम्म) कर्मों को (वधदि) बाँधता है और (विरागसपण्णो) विरक्त जीव (मुञ्चदि) कर्मो से छूटता है (एमो) यह (जिणोवदेसो) जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है (तम्हा) इसलिए हे भव्य जीव ! (कम्मेसु) कर्मों में (मा रज्ज) तू राग मत कर ।।

अर्थ – रागी जीव कर्मो को बाँधता है और विरागी जीव कर्मो से छूटता है, यह जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है, इमलिए (हे भव्य जीव !) तू कर्मों मे गग मत कर !

ज्ञान निर्वाण का कारण है—

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तम्हि ट्ठिदा सहावे[1] मुणिणो पावंति णिव्वाण ।। ४-७-१५१

सान्वय अर्थ – (खलु) **निश्चय से** (जो) **जो** (परमट्ठो) **परमार्थ–आत्मा है–वह** (समओ) **समय–शुद्ध गुण-पर्यायो में परिणमन करने वाला है** (सुद्धो) **शुद्ध-समस्त नयपक्षो मे रहित एक ज्ञान स्वरूप होने से शुद्ध है** (केवली) **केवली-केवल चिन्मात्र वस्तुस्वरूप होने से केवलो है** (मुणी) **मुनि–केवल मननमात्र भावस्वरूप होने से मुनि है** (णाणी) **ज्ञानी-स्वय ही ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानी है** (तम्हि सहावे) **उस परमात्म स्वभाव में** (ट्ठिदा) **स्थित** (मुणिणो) **मुनिजन** (णिव्वाण) **निर्वाण को** (पावति) **प्राप्त करते है ।**

अर्थ – निश्चय से जो परमार्थ (आत्मा) है, वह समय (शुद्ध गुण-पर्यायो मे परिणमन करने वाला) है, शुद्ध (समस्त नयपक्षो मे रहित एक ज्ञानस्वरूप होने से शुद्ध) है, केवली (केवल चिन्मात्र वस्तुस्वरूप होने से केवली) है, मुनि (केवल मननमात्र भावस्वरूप होने से मुनि) है, ज्ञानी (स्वय ही ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानी) है । उस परमात्मस्वभाव मे स्थित मुनिजन निर्वाण को प्राप्त करते है ।

---

१ सब्भावे इत्यपि पाठ । आत्मख्याति के अनुसार 'सहावे' और 'सब्भावे' मे केवल शब्दभेद है, अर्थभेद नहीं ।

अज्ञानी का व्रत, तप निष्फल है--

परमट्ठम्मि दु अठिदो जो कुणदि तव वदं च धारयदि ।
त सव्व वालतवं बालवद विंति सव्वण्हू ।। ४-८-१५२

सान्वय अर्थ -- (जो) जो (परमट्ठम्मि) परमार्थ में (दु) तो (अठिदो) स्थित नहीं है, किन्तु (तव) तप (कुणदि) करता है (च) और (वद) व्रत (धारयदि) धारण करता है (त सव्व) उसके उस समस्त तप और व्रत को (सव्वण्हू) सर्वज्ञदेव (वालतव) बालतप और (वालवद) बालव्रत (विंति) कहते हैं ।

अर्थ -- जो परमार्थ मे तो स्थित नही है, किन्तु तप करता है और व्रत धारण करता है, उसके उस ममस्त तप और व्रत को सर्वज्ञदेव वालतप और बालव्रत कहते है ।

अज्ञानी को निर्वाण नही है–

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वता ।
परमट्ठवाहिरा जे णिव्वाण ते ण विंदंति ।। ४-९-१५३

सान्वय अर्थ –(वदणियमाणि) व्रत और नियमो को (धरता) धारण करते हुए भी (तहा) तथा (सीलाणि) शील (च) और (तव) तप (कुव्वता) करते हुए भी (जे) जो (परमट्ठवाहिरा) परमार्थ से बाह्य है–परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा की जिन्हें अनुभूति नहीं है (ते) वे (णिव्वाण) निर्वाण को (ण) नहीं (विंदति) प्राप्त करते।

अर्थ – व्रत और नियमो को धारण करते हुए तथा शील और तप करते हुए भी जो परमार्थ से वाह्य हैं (जिन्हें परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति नही है), वे निर्वाण को प्राप्त नही करते ।

पुण्य ससार का कारण है–

परमट्ठवाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छति ।
संसारगमणहेदु वि मोॅक्खहेदुं अयाणता ।। ४-१०-१५४

मान्वय अर्थ – (जे) जो (परमट्ठवाहिरा) **परमार्थ से बाह्य है–शुद्ध आत्मस्वरूप का जिन्हें अनुभव नहीं है (ते) वे (मोॅक्खवहेदु) मोक्ष के हेतु को (अयाणता) न जानते हुए (अण्णाणेण) अज्ञान से (ससारगमणहेदु वि) ससार-गमन का हेतु होने पर भी (पुण्ण-मिच्छति) पुण्य को चाहते है।**

अर्थ – जो परमार्थ मे वाह्य हैं (शुद्ध आत्मस्वरूप का जिन्हे अनुभव नही है), वे मोक्ष के हेतु को न जानते हुए अज्ञान से समार-गमन के भी कारण पुण्य को चाहते है।

मोक्ष-मार्ग–

जीवादीसद्दहणं सम्मत्त तेसिमधिगमो णाणं ।
रागादीपरिहरण चरणं एसो दु मोॅक्खपहो ।। ४-११-१५५

सान्वय अर्थ – (जीवादीसद्दहण) **जीवादिक नौ पदार्थों का श्रद्धान करना** (सम्मत्त) **सम्यग्दर्शन है** (तेसिमधिगमो) **उन्हीं पदार्थों का सशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान** (णाण) **सम्यग्ज्ञान है** (रागादी परिहरण) **रागादिक का परित्याग** (चरण) **सम्यक् चारित्र है** (एसो दु) **यही** (मोॅक्खपहो) **मोक्ष का मार्ग है।**

अर्थ – जीवादिक नौ पदार्थो का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। उन्ही पदार्थों का सशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। रागादिक का परित्याग सम्यक्चारित्र है। यही मोक्ष का मार्ग है।

यति कर्मो का क्षय करता है–

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्ठति ।
पवमट्ठमस्सिदाण दु जदीण[1] कम्मक्खओ होदि ।। ४-१२-१५६

मान्वय अर्थ – (णिच्छयट्ठ) निश्चय नय के विषय को (मोत्तूण) छोड़कर (विदुसा) विद्वान् (ववहारेण) व्यवहार के द्वारा (पवट्ठति) प्रवृत्ति करते हैं (दु) किन्तु (परमट्ठमस्सिदाण) निज शुद्धात्मभूत परमार्थ के आश्रित (जदीण) यतियो के ही (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय (होदि) होता है ।

अर्थ – निश्चयनय के विषय को छोडकर विद्वान् व्यवहार के द्वारा प्रवृत्ति करते हैं, किन्तु निज शुद्धात्मभूत परमार्थ के आश्रित यतियो के ही कर्मों का क्षय होता है ।

१ निरत कात्स्न्यनिवृत्तौ भवति यति समयसारभूतोऽयम् ।'
—पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १४७

रत्नत्रय की मलिनता के कारण–

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणाच्छण्णो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्ण तह सम्मत्त खु णादव्वं ।। ४-१३-१५७

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणाच्छण्णो ।
अण्णाणमलोच्छण्ण तह णाण होदि णादव्व ।। ४-१४-१५८

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणाच्छण्णो ।
कस्सायमलोच्छण्ण तह चारित्त पि णादव्वं[1] ।। ४-१५-१५९

मान्वय अर्थ – (जह) जैसे (मलविमेलणाच्छण्णो) मैल से व्याप्त हुआ (वत्थस्स) वस्त्र का (सेदभावो) श्वेतभाव (णासदि) नष्ट हो जाता है (तह) उसी प्रकार (मिच्छत्तमलोच्छण्ण) मिथ्यात्व रूपी मैल से व्याप्त (सम्मत्त) सम्यक्त्व (खु) निश्चय ही तिरोहित हो जाता है, (णादव्व) ऐसा जानना चाहिये ।

(जह) जिस प्रकार (मलविमेलणाच्छण्णो) मैल से व्याप्त हुआ (वत्थस्स) वस्त्र का (सेदभावो) श्वेत भाव (णासदि) नष्ट हो जाता है (तह) उसी प्रकार (अण्णाणमलोच्छण्ण) अज्ञानरूपी मैल से व्याप्त (णाण) ज्ञान (होदि) तिरोहित हो जाता है, (णादव्व) ऐसा जानना चाहिये ।

(जह) जिस प्रकार (मलविमेलणाच्छण्णो) मैल से व्याप्त हुआ (वत्थस्स) वस्त्र का (सेदभावो) श्वेतभाव (णासदि) नष्ट हो जाता है (तह पि) उसी प्रकार (कस्सायमलोच्छण्ण) कषाय से व्याप्त हुआ (चारित्त) चारित्र (होदि) तिरोहित हो जाता है, (णादव्व) ऐसा जानना चाहिये ।

---
१ मूडवद्रीताडपत्रप्रती ।

अर्थ – जैसे मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्वरूपी मैल से व्याप्त सम्यक्त्व निश्चय ही तिरोहित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये ।

जिस प्रकार मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल से व्याप्त ज्ञान तिरोहित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये ।

जिस प्रकार मैल से व्याप्त हुआ वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार कषाय से व्याप्त हुआ चारित्र तिरोहित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये ।

कर्म स्वय ही वन्धस्वरूप हैं—

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरयेण णिएणावच्छण्णो ।
ससारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्व ।। ४-१६-१६०

सान्वय अर्थ – (सो) वह आत्मा (सव्वणाणदरिसी) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है फिर भी वह (णिएण) अपने (कम्मरयेण) कर्मरूपी रज से (अवच्छण्णो) आच्छादित है—अतः वह (ससारसमावण्णो) संसार को प्राप्त हुआ है—वह (सव्व) सब पदार्थों को (सव्वदो) सब प्रकार से (ण विजाणदि) नहीं जानता ।

अर्थ – वह आत्मा (स्वभाव मे) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है । (फिर भी वह) अपने कर्मरूपी रज मे आच्छादित है (अत वह) समार को प्राप्त हुआ है । वह समस्त पदार्थों को सव प्रकार से नही जानता ।

रत्नत्रय के प्रतिवन्धक कारण–

सम्मत्तपडिणिबद्ध मिच्छत्त जिणवरेहि परिकहिद ।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति णादव्वो ।। ४-१७-१६१

णाणस्स पडिणिबद्ध अण्णाणं जिणवरेहि परिकहिद ।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णादव्वो ।। ४-१८-१६२

चारित्तपडिणिबद्ध कसायमिदि जिणवरेहि परिकहिद ।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो ।। ४-१९-१६३

सान्वय अर्थ – (सम्मत्तपडिणिवद्ध) **सम्यक्त्व का प्रतिबन्धक–रोकने वाला** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व है–यह** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिद) **कहा है** (तस्सोदयेण) **उसके–मिथ्यात्व के–उदय से** (जीवो) **जीव** (मिच्छादिट्ठि त्ति) **मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।** (णाणस्स) **ज्ञान का** (पडिणिवद्ध) **प्रतिबन्धक–रोकने वाला** (अण्णाण) **अज्ञान है–ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिद) **कहा है** (तस्सोदयेण) **उसके उदय से** (जीवो) **जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (होदि) **होता है–ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।** (चारित्तपडिणिवद्ध) **चारित्र का प्रतिबन्धक–रोकने वाला** (कसाय) **कषाय है–ऐसा** (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव ने** (परिकहिद) **कहा है** (तस्सोदयेण) **उसके उदय से** (जीवो) **जीव** (अचरित्तो) **चारित्ररहित** (होदि) **होता है–ऐसा** (णादव्वो) **जानना चाहिये।**

अर्थ – सम्यक्त्व का प्रतिबन्धक (रोकने वाला) मिथ्यात्व है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा जानना चाहिये।

ज्ञान का प्रतिवन्धक (रोकने वाला) अज्ञान है, यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव अज्ञानी होता है, ऐसा जानना चाहिये।

चारित्र का प्रतिवन्धक (रोकने वाला) कषाय है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसके उदय से जीव चारित्ररहित होता है, ऐसा जानना चाहिये।

इदि चउत्थो पुण्णपावाधियारो समत्तो

पंचमो आसवाधियारो

दो प्रकार के आस्रव–

मिच्छत्त अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेदा जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ।। ५-१-१६४

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेंसि पि होदि जीवो रागद्दोसादिभावकरो ।। ५-२-१६५

सान्वय अर्थ – मिच्छत्त) **मिथ्यात्व** (अविरमण) **अविरति** (कसायजोगा य) **कषाय और योग** (सण्णसण्णा दु) **भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय के रूप में चेतन और अचेतन दो प्रकार के होते है, जो चेतन के विकार हे वे** (जीवे) **जीव में** (वहुविहभेदा) **अनेक प्रकार के भेद वाले हे और वे** (तस्सेव) **जीव के ही** (अणण्ण-परिणामा) **अनन्य परिणाम हे** (ते दु) **जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार हे वे** (णाणावरणादीयस्स कम्मस्स) **ज्ञानावरण आदि कर्मों के** (कारण) **कारण–निमित्त–**(होंति) **होते हे** (तेंसि पि) **उन मिथ्यात्व आदि अचेतन विकारो का कारण-निमित्त** (रागद्दोसादि-भावकरो) **राग, द्वेष आदि भावो का कर्त्ता** (जीवो) **जीव** (होदि) **होता है ।**

अर्थ – मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग (भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय के रूप मे) चेतन और अचेतन दो प्रकार के है। (जो चेतन के विकार है वे) जीव मे अनेक प्रकार के भेद वाले है और वे जीव के ही अनन्य परिणाम है। जो मिथ्यात्व आदि पुद्गल के विकार हैं, वे ज्ञानावरण आदि कर्मों के निमित्त हैं। उन मिथ्यात्व आदि अचेतन विकारो का निमित्त राग-द्वेष आदि भावो का कर्त्ता जीव होता है ।

सम्यग्दृष्टि के आस्रवों का अभाव है–

णत्थि दु आसववंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
सते पुव्वणिवद्धे जाणदि सो ते अवधंतो ।। ५-३-१६६

सान्वय अर्थ – (सम्मादिट्ठिस्स) सम्यग्दृष्टि के (आसववधो) आस्रव निमित्तक बन्ध (णत्थि) नहीं है (दु) किन्तु (आसवणिरोहो) आस्रव का निरोध है (ते) नवीन कर्मों को (अबधंतो) न बांधता हुआ (सो) वह (सते) सत्ता में विद्यमान (पुव्वणिवद्धे) पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को (जाणदि) जानता है ।

अर्थ – सम्यग्दृष्टि के आस्रवनिमित्तक बन्ध नहीं है, किन्तु आस्रव का निरोध है। नवीन कर्मों को न बांधता हुआ वह सत्ता में विद्यमान पूर्व में बाँधे हुए कर्मों को जानता है ।

गगद्वेष ही आस्रव है–

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो होदि ।
रागादि विप्पमुक्को अवंधगो जाणगो णवरि ।। ५-४-१६७

सान्वय अर्थ – (जीवेण कदो) जीव के द्वारा किया हुआ (रागादिजुदो) रागादियुक्त (भावो) भाव (दु) तो (वधगो) नवीन कर्मों का वन्ध करने वाला (होदि) होता है–और (रागादिविप्पमुक्को) रागादि से रहित भाव (अवधगो) वन्ध नहीं करता (णवरि) वह मात्र (जाणगो) ज्ञायक है।

अर्थ – जीव के द्वारा किया हुआ रागादियुक्त भाव तो नवीन कर्मों का वन्ध करने वाला होता है और रागादि मे रहित भाव वन्ध नही करता। वह मात्र ज्ञायक है।

निर्जरित कर्म का पुन वन्ध नही–

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फल वज्झदे पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेदि ।। ५-५-१६८

मान्वय अर्थ – (जह) जैसे (पक्के) पके हुए (फले) फल के (पडिदे) गिरने पर (फल) वह फल (पुणो) पुनः (विंटे) डठल में (ण वज्झदे) नहीं जुडता, उसी प्रकार (जीवस्स) जीव के (कम्मभावे पडिदे) पुद्गल कर्मों की निर्जरा होने पर (पुणो) पुन· (ण उदय-मुवेदि) वे उदय को प्राप्त नहीं होते।

अर्थ – जैमे पके हुए फल के (वृक्ष मे) गिरने पर वह फल पुन डठल से नही जुडता, उसी प्रकार जीव के पुद्गल कर्मों की निर्जरा होने पर पुन वे उदय को प्राप्त नही होते (पुनः वे जीव के साथ नही बँधते)।

ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव है–

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स ।। ५-६-१६९

सान्वय अर्थ – (तस्स णाणिस्स) **उस ज्ञानी के** (पुव्वणिवद्धा) **पूर्व अज्ञान अवस्था में बँधे** (सव्वे वि पच्चया) **समस्त प्रत्यय** (दु) **तो** (पुढवीपिडसमाणा) **पृथ्वी के ढेले के समान है** (दु) **और** (ते) **वे** (कम्मसरीरेण) **कार्मण शरीर के साथ** (वद्धा) **बँधे हुए हैं ।**

अर्थ – उस ज्ञानी के पहले (अज्ञान अवस्था मे) बँधे हुए सभी (मिथ्यात्वादि द्रव्य) प्रत्यय तो पृथ्वी के ढेले के समान हैं (अकिंचित्कर है), और वे (अपने पुद्‌गलस्वभाव से) कार्मण शरीर के साथ बँधे हुए हैं ।

ज्ञान गुण से कर्म-बन्ध—

चउविह अणेयभेयं बंधते णाणदसणगुणेहिं ।
समये समये जम्हा तेण अवधो त्ति णाणी दु ।। ५-७-१७०

सान्वय अर्थ – (जम्हा) क्योकि (चउविह) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार प्रकार के द्रव्यास्रव (णाणदसणगुणेहि) ज्ञान-दर्शन गुणो के द्वारा (समये समये) प्रतिसमय (अणेयभेय) अनेक प्रकार के कर्मों को (बधते) बाँधते हैं (तेण) इसलिए (णाणी) ज्ञानी (दु) तो (अबधो त्ति) अबन्ध है।

अर्थ – क्योकि (मिथ्यात्व अविरति, कषाय और योग) ये चार प्रकार के द्रव्यास्रव ज्ञान-दर्शन गुणो के द्वारा प्रतिसमय अनेक प्रकार के कर्मो को बाँधते है, अत ज्ञानी तो अबन्ध ही है।

ज्ञानगुण कर्म-बन्ध का कारण क्यो है–

जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ।। ५-८-१७१

सान्वय अर्थ – (जम्हा दु) क्योकि (णाणगुणो) ज्ञानगुण (जहण्णादो णाणगुणादो) जघन्य ज्ञानगुण से (पुणो वि) पुनः अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् (अण्णत्त) अन्य रूप से (परिणमदि) परिणमन करता है (तेण दु) इसलिए (सो) वह (बधगो) कर्म-बन्ध कराने वाला (भणिदो) कहा गया है ।

अर्थ – क्योकि ज्ञानगुण ज्ञानगुण के जघन्य भाव (क्षायोपशमिक ज्ञान) के कारण पुन अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अन्य रूप से परिणमन करता है, इमी कारण वह (ज्ञानगुण का जघन्य भाव–यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति से पूर्व तक) कर्म का वन्ध कराने वाला कहा गया है ।

रत्नत्रय का जघन्य भाव कर्म-बन्ध का कारण है–

दसणणाणचरित्त जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु वज्झदि पोॅग्गलकम्मेण विविहेण ।। ५-६-१७२

सान्वय अर्थ – (दसणणाणचरित्त) दर्शन, ज्ञान और चारित्र (जहण्णभावेण) जघन्य भाव से (ज) जो (परिणमदे) परिणमन करते हैं (तेण दु) इसलिए (णाणी) ज्ञानी जीव (विविहेण) अनेक प्रकार के (पोॅग्गलकम्मेण) पुद्गल कर्मों से (वज्झदि) बन्ध को प्राप्त होता है ।

अर्थ – दर्शन, ज्ञान और चारित्र जघन्य भाव से जो परिणमन करते है, उसके कारण ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मो से बन्ध को प्राप्त होता है ।

मम्यग्दृष्टि के कर्म-बन्ध नही होता—

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओग बधते कम्मभावेण ।। ५-१०-१७३

सता दु णिरुवभोज्जा वाला इत्थी जहेव पुरिसस्स ।
वधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ।। ५-११-१७४

होदूण णिरुवभोज्जातह वधदि जह हवति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ।। ५-१२-१७५

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अवंधगो भणिदो ।
आसवभावाभावे ण पच्चया वंधगा भणिदा ।। ५-१३-१७६

सान्वय अर्थ — (सम्मादिट्ठिस्स) सम्यग्दृष्टि जीव के (पुव्व-णिवद्धा दु) पूर्व की सराग दशा में वाँधे हुए (सव्वे) सभी (पच्चया) द्रव्यास्रव (संति) सत्ता में विद्यमान हैं—वे (उवओगप्पाओग) उपयोग के प्रयोगानुसार (कम्मभावेण) कर्म के रूप में (वधते) वन्ध को प्राप्त होते हैं (सता दु) सत्ता में विद्यमान रहते हैं फिर भी—उदय से पूर्व (णिरुवभोज्जा) भोगने योग्य नहीं होते (जहेव) जिस प्रकार (पुरिसस्स) किसी पुरुष की (वाला इत्थी) वाल स्त्री भोग्य नहीं होती (ते) वे ही कर्म (उवभोज्जे) उदय काल में भोगने योग्य होने पर (ववदि) नये कर्मो का वन्ध करते हैं (जह) जिस प्रकार (णरस्स) किसी पुरुष की (तरुणी इत्थी) तरुणी स्त्री भोग्य होती है और पुरुष को रागभाव में वाँध लेती है (णिरुवभोज्जा होदूण) वे पूर्ववद्ध प्रत्यय भोगने के अयोग्य होकर (जह) जैसे (उवभोज्जा) भोगने योग्य (हवंति) होते है (तह) उसी प्रकार (णाणावरणादि भावेहि) ज्ञानावरण आदि रूप मे (सत्तट्ठविहा भूदा) आयु कर्म के विना सात प्रकार के और आयु कर्म सहित आठ प्रकार के कर्मो को (वधदि)

बाँधते हैं (एदेण कारणेण दु) इसी कारण से (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि जीव (अवधगो) कर्म-बन्ध न करने वाला (भणिदो) कहा गया है (आस्रवभावाभावे) आस्रव भाव-रागादि भावास्रव के अभाव में (पच्चया) द्रव्य प्रत्यय (वधगा) बन्धकारक (ण) नहीं (भणिदा) कहे गये हैं।

अर्थ — सम्यग्दृष्टि जीव के पूर्व की सराग दशा मे बाँधे हुए सभी द्रव्यास्रव सत्ता मे विद्यमान हैं। वे उपयोग के प्रयोगानुसार कर्म भाव के द्वारा (रागादि भाव प्रत्ययो के द्वारा) बन्ध को प्राप्त होते है। सत्ता मे विद्यमान रहते हैं फिर भी उदय मे पूर्व वे भोगने योग्य नही होते। जैसे बाल स्त्री पुरुष के लिए भोग्य नही होती। वे ही कर्म उदयकाल मे भोगने योग्य होने पर नये कर्मों को बाँधते हैं, जिस प्रकार तरुणी स्त्री पुरुष के लिए (भोग्य होती है और पुरुष को रागभाव मे बाँध लेती है)। वे पूर्वबद्ध कर्म भोगने के अयोग्य होकर जैसे भोगने योग्य होते हैं, उसी प्रकार ज्ञानावरण आदि रूप से (आयु कर्म के बिना) सात प्रकार के और (आयु कर्म सहित) आठ प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं। इसी कारण से सम्यग्दृष्टि जीव अबन्धक (कर्म-बन्ध न करने वाला) कहा गया है। रागादि भावास्रव के *अभाव मे द्रव्य प्रत्यय बन्धकारक* नही होते हैं।

भाव प्रत्यय के बिना द्रव्य प्रत्यय नही होता—

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ।। ५-१४-१७७

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारण हवदि ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण वज्झंति ।। ५-१५-१७८

सान्वय अर्थ – (रागो) राग (दोसो) द्वेष (य) और (मोहो) मोह (आसवा) ये आस्रव (सम्मदिट्ठिस्स) सम्यग्दृष्टि के (णत्थि) नहीं होते (तम्हा) इसलिए (आसवभावेण विणा) रागादि भावास्रव के बिना (पच्चया) द्रव्य प्रत्यय (हेदू) कर्म-बन्ध के कारण (ण होंति) नही होते (चदुव्वियप्पो हेदू) मिथ्यात्व आदि चार प्रकार के हेतु अट्ठवियप्पस्स) आठ प्रकार के कर्मो के (कारण) कारण (हवदि) होते है (च) और (तेसिं पि) उन चार प्रकार के हेतुओ के (रागादी) जीव के रागादि भाव-कारण है (तेसिमभावे) उन रागादि भावो का अभाव होने के कारण (ण वज्झन्ति) कर्मो का बन्ध नहीं होता—इसलिए सम्यग्दृष्टि के कर्मबन्ध नहीं होता ।

अर्थ – राग, द्वेप और मोह ये आस्रव सम्यग्दृष्टि के नही होते । इसलिए रागादि भावास्रव के विना द्रव्य प्रत्यय कर्म-वन्ध के कारण नही होते । मिथ्यात्व आदि चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के कर्मों के कारण होते है और उन चार प्रकार के हेतुओ के कारण जीव के रागादि भाव है । उन रागादि भावो का अभाव होने के कारण सम्यग्दृष्टि के कर्म-वन्ध नही होता ।

शुद्धनय मे च्युत जीव के वन्ध होता है–

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं ।
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो ।। ५-१६-१७९

तह णाणिस्स दु पुव्व जे वद्धा पच्चया वहुवियप्पं ।
वज्झंते कम्म ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ।। ५-१७-१८०

सान्वय अर्थ – (जह) जैसे (पुरिसेण) पुरुष के द्वारा (गहिदो) ग्रहण किया हुआ (आहारो) आहार (उदरग्गिसजुत्तो) उदराग्नि का सयोग पाकर (सो) वह आहार (मसवसारुहिरादी भावे) मांस, मज्जा, रुधिर आदि के रूप में (अणेयविह) अनेक रूप में (परिण-मदि) परिणमन करता है (तह) उसी प्रकार (णाणिस्स दु) ज्ञानी के (पुव्व वद्धा) पूर्व में वद्ध (जे पच्चया) जो प्रत्यय-द्रव्यास्रव थे (ते) वे (वहुवियप्प) अनेक प्रकार के (कम्म) कर्मों को (वज्झते) वाँधते है (ते दु जीवा) वे जीव (णयपरिहीणा) शुद्ध नय से च्युत है (शुद्धनय से च्युत होने पर ही ज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है । उससे द्रव्यास्रव और कर्म-वन्ध होता है) ।

अर्थ – जैसे पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार उदराग्नि का सयोग पाकर वह मास, मज्जा, रुधिर आदि के रूप से अनेक रूप मे परिणमन करता है, उसी प्रकार ज्ञानी के पूर्व मे वद्ध जो द्रव्यास्रव थे, वे अनेक प्रकार के कर्मों को वाँधते हैं । वे जीव शुद्धनय से च्युत है (शुद्धनय से च्युत होने पर ही ज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है । उससे द्रव्यास्रव और कर्म-वन्ध होता है ।)

इदि पचमो आसवाधियारो समत्तो

छट्ठमो संवराधियारो

भेदविज्ञान ही सवर का उपाय है–

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ।। ६-१-१८१
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगम्हि य कम्म णोकम्म चावि णो अत्थि ।। ६-२-१८२
एद तु अविवरीद णाण जइया दु होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भाव उवओगसुद्धप्पा ।। ६-३-१८३

मान्वय अर्थ – (उवओगो) **उपयोग** (उवओगे) **उपयोग में है** (कोहादिसु) **क्रोध आदि में** (को वि) **कोई भी** (उवओगो) **उपयोग** (णत्थि) **नहीं है** (च) **और** (कोहे एव हि) **क्रोध में ही** (कोहो) **क्रोध है** (खलु) **निश्चय ही** (उवओगे) **उपयोग में** (कोहो) **क्रोध** (णत्थि) **नही है** (अट्ठवियप्पे) **आठ प्रकार के** (कम्मे) **कर्मों में** (च) **और** (णोकम्मे अवि) **नोकर्म में भी** (उवओगो) **उपयोग** (णत्थि) **नही है** (य) **और** (उवओगम्हि) **उपयोग में** (कम्म) **कर्म** (च) **और** (णोकम्म अवि) **नोकर्म भी** (णो अत्थि) **नही है** (जइया दु) **जिस काल में** (एद तु) **ऐसा** (अविवरीद) **अविपरीत-सत्यार्थ** (णाण) **ज्ञान** (जीवस्स) **जीव को** (होदि) **हो जाता है** (तइया) **तब** (उवओगसुद्धप्पा) **उपयोग स्वरूप शुद्धात्मा** (किंचि भाव) **उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को** (ण कुव्वदि) **नहीं करता ।**

अर्थ – उपयोग मे उपयोग है, क्रोध आदि मे कोई भी उपयोग नही है । और क्रोध मे ही क्रोध है, निश्चय ही उपयोग मे क्रोध नही है । आठ प्रकार के (ज्ञानावरणादि) कर्मो और (शरीरादि) नोकर्मो मे भी उपयोग नही है और उपयोग मे कर्म और नोकर्म भी नही है । जिस काल मे जीव को ऐसा अविपरीत (सत्यार्थ) ज्ञान हो जाता है, तब उपयोग-स्वरूप शुद्धात्मा उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को नही करता ।

भदविज्ञान मे शुद्धात्मा की प्राप्ति–

जह कणयमग्गितविय पि कणयसहाव ण त परिच्चयदि ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्त ।। ६-४-१८४

एव जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवाद ।
अण्णाणतमोच्छण्ण आदसहाव अयाणतो ।। ६-५-१८५

सान्वय अर्थ – (जह) जैसे (अग्गितविय पि) अग्नि में तपाया हुआ भी (कणय) सोना (त कणयसहाव) अपने सुवर्ण-स्वभाव को (ण परिच्चयदि) नहीं छोडता (तह) इसी प्रकार (कम्मोदयतविदो) तीव्र परीषह-उपसर्गरूप कर्मोदय से तप्त होता हुआ (णाणी दु) ज्ञानी भी (णाणित्त) ज्ञानीपने के स्वभाव को (ण जहदि) नहीं छोडता (एव) इस प्रकार (णाणी) ज्ञानी (जाणदि) जानता है– और (अण्णाणतमोच्छण्ण) अज्ञान रूप अन्धकार से आच्छन्न (अण्णाणी) अज्ञानी (आदसहाव) आत्मस्वभाव को (अयाणतो) न जानता हुआ (रागमेव) राग को ही (आद) आत्मा (मुणदि) मानता है ।

अर्थ – जैसे अग्नि मे भी तपाया हुआ सोना अपने सुवर्ण-स्वभाव को नही छोडता, इसी प्रकार (तीव्र परीषह-उपसर्गरूप) कर्मोदय से तप्त होता हुआ ज्ञानी भी अपने ज्ञानीपने के स्वभाव को नही छोडता । इस प्रकार ज्ञानी जानता है और अज्ञानरूप अन्धकार मे आच्छन्न अज्ञानी आत्मस्वभाव को न जानता हुआ राग को ही आत्मा मानता है ।

शुद्धात्मा के अनुभव से संवर होता है–

सुद्धं तु वियाणंतो विसुद्धमेवप्पय लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पय लहदि ॥ ६-६-१८६

सान्वय अर्थ – (सुद्ध तु) शुद्ध आत्मा को (वियाणंतो) जानता हुआ (जीवो) जीव (विसुद्धमेव) शुद्ध ही (अप्पय) आत्मा को (लहदि) प्राप्त करता है (दु) और (असुद्ध) अशुद्ध आत्मा को (जाणतो) जानता हुआ जीव (असुद्धमेव अप्पय) अशुद्ध आत्मा को ही (लहदि) प्राप्त करता है ।

अर्थ – शुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है और अशुद्ध आत्मा को जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है ।

मवर की विधि—

अप्पाणमप्पणा रुंधिदूण दोपुण्णपावजोगेसु ।
दसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ।। ६-७-१८७

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ।। ६-८-१८८

अप्पाणं झायंतो दसणणाणमइओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ।। ६-९-१८९

मान्वय अर्थ – (अप्पाण) आत्मा को (अप्पणा) आत्मा के द्वारा (दोपुण्णपावजोगेमु) पुण्य और पाप इन दोनो शुभाशुभ योगो से (रुधिदूण) रोक कर (दमणणाणम्हि) दर्शन और ज्ञान में (ठिदो) स्थित हुआ (य) और (अण्णम्हि) अन्य देह—रागादि मे (इच्छा-विरदो) इच्छा से विरत हुआ—तथा (सव्वमगमुक्को) समस्त वाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हुआ (जो अप्पा) जो आत्मा (अप्पाण) आत्मा को (अप्पणा) आत्मा के द्वारा (झायदि) ध्याता है (कम्म ण वि णोकम्म) न कर्म को और न नोकर्म को ध्याता है (चेदा) ऐसा गुणविशिष्ट आत्मा (एयत्त) एकत्व का (चितेदि) चिन्तन-अनुभव करता है (मो) वह आत्मा (अप्पाण) अपनी आत्मा का (झायतो) ध्यान करता हुआ (दमणणाणमइओ) दर्शन और ज्ञानमय—और (अणण्णमओ) अनन्यमय होता हुआ (अचिरेण एव) थोड़े ही काल में (कम्मपविमुक्क) कर्मो से रहित (अप्पाण) आत्मा को (लहदि) प्राप्त कर लेता है ।

अर्थ – आत्मा को अपनी आत्मा के द्वारा पुण्य और पाप इन दोनो शुभाशुभ योगो मे रोककर दर्शन और ज्ञान मे स्थित हुआ और अन्य देह रागादि मे

इच्छा से विरत हुआ तथा समस्त बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से रहित हुआ जो आत्मा अपनी आत्मा को अपनी आत्मा के द्वारा ध्याता है, (एव) कर्म और नोकर्म को नही ध्याता है, ऐसा गुणविशिष्ट आत्मा एकत्व का चिन्तन (अनुभव) करता है। वह आत्मा अपनी आत्मा का ध्यान करता हुआ दर्शन-ज्ञानमय हुआ और अनन्यमय हुआ थोडे ही काल मे कर्मो मे रहित आत्मा को प्राप्त कर लेता है।

संवर का क्रम–

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं ।
मिच्छत्त अण्णाण अविरदिभावो य जोगो य ।। ६-१०-१९०

हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो ।। ६-११-१९१

कम्मस्साभावेण य णोकम्माण पि जायदि णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहण होदि ।। ६-१२-१९२

सान्वय अर्थ – (सव्वदरिसीहिं) सर्वज्ञदेव ने (तेसिं) रागादि विभाव कर्मरूप भावास्रवो के (हेद) कारण (मिच्छत्त) मिथ्यात्व (अण्णाण) अज्ञान (य अविरदिभावो) और अविरतिभाव (य जोगो) और योग–ये चार (अज्झवसाणाणि) अध्यवसान (भणिदा) कहे हैं (णाणिस्स) ज्ञानी के (हेदु अभावे) हेतुओ के अभाव में (णियमा) नियम से (आसवणिरोहो) आस्रव का निरोध (जायदि) होता है (आसवभावेण विणा) आस्रवभाव के विना (कम्मस्स दु) कर्म का भी (णिरोहो) निरोध (जायदि) हो जाता है (य) और (कम्मस्सा-भावेण) कर्म का अभाव होने पर (णोकम्माण पि) नो कर्मो का भी (णिरोहो) निरोध (जायदि) हो जाता है (य) और (णोकम्मणि-रोहेण) नोकर्म का निरोध होने से (संसारणिरोहण) संसार का निरोध (होदि) होता हैं।

अर्थ – सर्वज्ञदेव ने (रागादि विभाव कर्मरूप) भावास्रवो के कारण मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरतिभाव और योग ये चार अध्ययवसान कहे हैं। ज्ञानी के हेतुओं के अभाव में नियम से आस्रव का निरोध होता है। आस्रवभाव के विना कर्म का भी निरोध हो जाता है और कर्म का अभाव होने से नोकर्म का भी निरोध हो जाता है। नोकर्म का निरोध होने से संसार का निरोध होता है।

इति छट्ठमो संवराधियारो समत्तो

सत्तमो णिज्जराधियारो

द्रव्यनिर्जरा का स्वरूप–

उवभोगमिन्दियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराण ।
ज कुणदि सम्मदिट्ठी त सव्व णिज्जरणिमित्त ।। ७-१-१९३

सान्वय अर्थ – (सम्मदिट्ठी) सम्यग्दृष्टि जीव (इंदियेहि) इन्द्रियो के द्वारा (अचेदणाण) अचेतन और (इदराणं) चेतन (दव्वाण) द्रव्यो का (ज) जो (उवभोग) उपभोग (कुणदि) करता है (त सव्व) वह सब (णिज्जरणिमित्त) निर्जरा का निमित्त है ।

अर्थ – सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियो के द्वारा अचेतन और चेतन द्रव्यो का जो उपभोग करता है, वह सब निर्जरा का निमित्त है ।

भाव निजरा का स्वरूप–

दव्वे उवभुज्जते णियमा जायदि सुह च दुक्ख वा ।
त सुहदुक्खमुदिण्ण वेददि अध णिज्जर जादि ॥ ७-२-१९४

सान्वय अर्थ – (दव्व) परद्रव्यो का (उवभुज्जते) जीव के द्वारा उपभोग करने पर (णियमा) नियम से (सुह व) सुख अथवा (दुक्ख वा) दु:ख (जायदि) होता है–जीव (त) उस (उदिण्ण) उदय में आये हुए (सुहदुक्ख) सुख, दु ख का (वेददि) अनुभव करता है (अव) फिर–वह (णिज्जरजादि) निर्जरा को प्राप्त हो जाता है–झड जाता है ।

अर्थ – परद्रव्यो का (जीव के द्वारा) उपभोग करने पर नियम से सुख अथवा दु ख होता है । (जीव) उदय में आये हुए उस सुख-दु ख का अनुभव करता है, फिर (वह) निर्जरा को प्राप्त हो जाता है (झड जाता है) ।

ज्ञानी को कर्म-वध नही होता—

जह विसमुवभुज्जतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पोंग्गलकम्मस्सुदय तह भुञ्जदि णेव बज्झदे णाणी ।। ७-३-१९५

सान्वय अर्थ – (जह) **जिस प्रकार** (वेज्जो पुरिसो) **विषवैद्य** (विसमुवभुज्जतो) **विष का उपभोग करता हुआ भी** (मरण) **मरण को** (ण उवयादि) **प्राप्त नही होता** (तह) **उसी प्रकार** (णाणी) **ज्ञानी पुरुष** (पोंग्गलकम्मस्स) **पुद्गल कर्म के** (उदय) **उदय को** (भुञ्जदि) **भोगता है, फिर भी** (णेव बज्झदे) **कर्म से बँधता नहीं ।**

अर्थ – जिम प्रकार विपवैद्य विप का उपयोग करता हुआ भी मरण को प्राप्त नही होता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुप पुद्गल कर्म के उदय को भोगता है, तथापि वह कर्म से नही बँधता ।

वैराग्य की सामर्थ्य–

जह मज्ज पिवमाणो अरदिभावेण ण मज्जदे पुरिसो ।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदे तहेण ।। ७-४-१९६

सान्वय अर्थ – (जह) जिस प्रकार (पुरिसो) कोई पुरुष (मज्ज) मद्य को (पिवमाणो) पीता हुआ (अरदिभावेण) तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य से (ण मज्जदे) मतवाला नही होता (तहेव) उसी प्रकार (णाणी वि) ज्ञानी भी (दव्वुवभोगे) द्रव्यो के उपभोग में (अरदो) विरक्त रहता हुआ (ण वज्झदे) कर्मो से नहीं बँधता ।

अर्थ – जिस प्रकार कोई पुरुष मद्य को पीता हुआ तीव्र अरतिभाव की सामर्थ्य से मतवाला नही होता, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी द्रव्यो के उपभोग मे विरक्त रहता हुआ (वैराग्य की सामर्थ्य से) कर्मो से नही बँधता ।

ज्ञानी और अज्ञानी मे अन्तर—

सेवतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि ।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि ।। ७-५-१९७

सान्वय अर्थ — (को वि) कोई सम्यग्दृष्टि—रागादि भाव के अभाव के कारण (सेवतो वि) विषयो का सेवन करता हुआ भी (ण सेवदि) सेवन नहीं करता—और अज्ञानी विषयो में रागभाव के कारण (असेवमाणो वि) उन्हें सेवन न करता हुआ भी (सेवगो) सेवन करने वाला होता है—जैसे (कस्सवि) किसी पुरुष की (पगरणचेट्ठा) कार्य सम्बन्धी क्रिया होती है (ण य सो पायरणो त्ति होदि) किन्तु वह कार्य करने वाला नहीं होता ।

अर्थ — कोई सम्यग्दृष्टि (रागादि भाव के अभाव के कारण) विषयो का सेवन करता हुआ भी उनका सेवन नही करता, (और अज्ञानी विपयो मे राग-भाव के कारण) उन्हे सेवन न करता हुआ भी सेवन करने वाला होता है । जैसे—किसी पुरुष की कार्यसम्बन्धी क्रिया होती है, किन्तु वह कार्य करने वाला नहीं होता ।

विशेषार्थ — जैसे कोई मुनीम सेठ की ओर से व्यापार का सब कार्य करता है, किन्तु उस व्यापार तथा उसकी लाभ-हानि का वह स्वामी नहीं होता । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भोगों का सेवन करता हुआ भी राग न होने के कारण उसका असेवक है और मिथ्यादृष्टि सेवन न करता हुआ भी राग के सद्भाव के कारण उसका सेवक है ।

ज्ञानी का स्व-पर-विवेक–

उदयविवागो विविहो कम्माण वण्णिदो जिणवरेंहि ।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ।। ७-६-१९८

सान्वय अर्थ – (जिणवरेहिं) जिनेन्द्रदेव ने (कम्माण) कर्मों के (उदयविवागो) उदय के फल (विविहो) अनेक प्रकार के (वण्णिदो) बताये हैं (ते दु) वे तो (मज्झ) मेरे (सहावा) स्वभाव (ण) नहीं हैं (अह दु) मैं तो (एक्को) एक (जाणगभावो) ज्ञायक भाव हूँ।

अर्थ – जिनेन्द्रदेव ने कर्मों के उदय के फल अनेक प्रकार के बताये है । वे तो मेरे स्वभाव नही है । मैं तो एक ज्ञायक भाव हूँ ।

राग पुद्गल कर्म है—

पोंग्गलकम्म रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण हु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमेक्को ।। ७-७-१९९

माान्वय अर्थ – (रागो) राग (पोंग्गलकम्म) पुद्गल कर्म है (तस्स) उसके (विवागोदओ) फलरूप उदय का (एसो) यह राग-रूप भाव (हवदि) है (एस हु) यह तो (मज्झ भावो) मेरा भाव (ण) नहीं है (अह दु) मैं तो (एक्को) एक (जाणगभावो) ज्ञायक भाव हूँ।

अर्थ – राग पुद्गलकर्म है। उसके फलरूप उदय से उत्पन्न यह रागरूप भाव है। यह तो मेरा भाव नही है। मैं तो एक टकोत्कीर्ण ज्ञायक भाव हूँ।

मम्यग्दृष्टि ज्ञानवैराग्य सम्पन्न होता है—

एव सम्मादिट्ठी अप्पाण मुणदि जाणगसहाव ।
उदय कम्मविवाग च मुयदि तच्च वियाणतो ।। ७-८-२००

मान्वय अर्थ — (एव) इस प्रकार (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (अप्पाण) अपने-आपको (जाणगसहाव) ज्ञायक स्वभाव (मुणदि) जानता है (च) और (तच्च) आत्मतत्त्व को (वियाणतो) जानता हुआ (कम्मविवाग उदय) कर्म के विपाक रूप उदय—कर्मोदय के विपाक से उत्पन्न भावो को (मुयदि) छोड देता है ।

अर्थ — पूर्वोक्त प्रकार मे सम्यग्दृष्टि अपने-आपको (टकोत्कीर्ण) ज्ञायक म्वभाव जानता है और आत्मतत्त्व को जानता हुआ कर्मोदय के विपाक से उत्पन्न भावो को छोड देता है ।

रागी जीव सम्यग्दृष्टि नही है—

परमाणुमेत्तय पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि ।। ७-९-२०१

अप्पाणमयाणतो अणप्पय चावि सो अयाणतो ।
किह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणतो ।। ७-१०-२०२

सान्वय अर्थ — (हु) वास्तव में (जस्स) जिस जीव के (रागादीण तु) रागादिक का (परमाणुमेत्तय पि) परमाणुमात्र-लेशमात्र भी (विज्जदे) विद्यमान है (सो तु) वह जीव (सव्वागमधरो वि) सर्वागम का धारक-ज्ञाता होने पर भी (अप्पाणय) आत्मा को (ण वि जाणदि) नहीं जानता (च) और (अप्पाण) आत्मा को (अयाणतो) न जानता हुआ (सो) वह (अणप्पय अवि) अनात्मा को भी (अयाणतो) नहीं जानता—अतः (जीवाजीवे) जीव और अजीव को (अयाणतो) न जानने वाला (किह) किस प्रकार (सम्मदिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (होदि) हो सकता है ?

अर्थ — वास्तव मे जिस जीव के रागादि (अज्ञान भावो) का परमाणुमात्र (लेशमात्र) भी विद्यमान है, वह जीव सम्पूर्ण शास्त्रो का ज्ञाता होने पर भी आत्मा को नही जानता और आत्मा को न जानता हुआ वह अनात्मा को भी नही जानता । इस प्रकार जीव और अजीव को न जानने वाला किस प्रकार सम्यग्दृष्टि हो सकता है ?

ज्ञान ही आत्मा का पद है–

आदम्हि दव्वभावे अपदे[1] मोत्तूण गिण्ह तह णियद ।
थिरमेगमिम भाव उवलब्भत सहावेण ।। ७-११-२०३

सान्वय अर्थ – (आदम्हि) आत्मा में (दव्वभावे) द्रव्य और भावो के मध्य में–अतत्स्वभाव से अनुभव में आने वाले भाव (अपदे) क्षणिक होने से आत्मा का स्थान नही हो सकते–अत· उन्हें (मोत्तूण) छोडकर (णियद) निश्चित (थिर) स्थिर (तह) तथा (एग) एक (इम) इस (सहावेण) स्वभाव से (उवलब्भत) अनुभव करने योग्य (भाव) भाव को (गिण्ह) ग्रहण कर ।

अर्थ – आत्मा मे द्रव्य और भावो के मध्य मे (अतत्स्वभाव से अनुभव मे आने वाले भाव) अपद है (क्षणिक होने से आत्मा का स्थान नही ले सकते), अत उन्हें छोडकर नियत, स्थिर तथा एक स्वभाव से अनुभव करने योग्य इस भाव को (चैतन्यमात्र ज्ञानभाव को) ग्रहण कर ।

१–अपदेि इत्यपि पाठ ।

ज्ञान से निर्वाण प्राप्त होता है–

आभिणिसुदोहिमणकेवल च त होदि एक्कमेव पद ।
सो एसो परमट्ठो ज लहिदु णिव्वुदिं जादि ।। ७-१२-२०४

मान्वय अर्थ – (आभिणिसुदोहिमणकेवल च) **मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान** (त) **ये–पाँचो ज्ञान** (एक्कमेव) **एक ही** (पद होदि) **पद हैं–एक ज्ञान नाम से जाने जाते हैं** (सो एसो) **सो यह** (परमट्ठो) **परमार्थ है–मोक्ष का साक्षात् उपाय है** (ज लहिदु) **जिसे प्राप्त करके** (णिव्वुदिं जादि) **आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है ।**

अर्थ – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँचो ज्ञान एक ही पद है (एक ज्ञान नाम से जाने जाते हैं)। सो यह (ज्ञान) परमार्थ है (मोक्ष का साक्षात् उपाय है) जिसे प्राप्त करके आत्मा निर्वाण को प्राप्त होता है ।

कर्मकाण्ड से ज्ञान प्राप्त नही होता—

णाणगुणेण विहीणा[1] एद तु पद वहू वि ण लहते ।
त गिण्ह णियदमेद[2] जदि इच्छसि कम्मपरिमोंक्ख ।। ७-१३-२०५

सान्वय अर्थ – (णाणगुणेण) ज्ञानगुण से (विहीणा) रहित (वहू वि) अनेक पुरुष—अनेक कर्म करते हुए भी (एद पद तु) ज्ञानरूप इस पद को (ण लहति) प्राप्त नहीं करते (त) इसलिए (जदि) यदि (कम्मपरिमोंक्ख) तू कर्मो से मुक्ति (इच्छसि) चाहता है तो (एद णियद) इस नियत ज्ञान को (गिण्ह) ग्रहण कर।

अर्थ—ज्ञानगुण से रहित अनेक पुरुप (अनेक कर्म करते हुए भी) ज्ञान स्वरूप इस पद को प्राप्त नही करते, इसलिए (हे भव्य!) यदि तू कर्मों से मुक्ति चाहता है तो इस नियत पद-ज्ञान को ग्रहण कर।

१—विहूणा इति बालचन्द टीकाया पाठ ।
२—सुपदमेद इत्यपि पाठ ।

ज्ञान से उत्तम सुख मिलता है–

एदम्हि रदो णिच्च सतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो होहिदि तुह उत्तम सोंक्ख ।। ७-१४-२०६

सान्वय अर्थ – (एदम्हि) इस ज्ञान में (णिच्च) सदा ही (रदो) प्रीति कर (एदम्हि) इस ज्ञान में ही तू (णिच्च) सदा ही (सतुट्ठो होहि) सन्तुष्ट रह (एदेण) इस ज्ञान से तू (तित्तोहोहि) तृप्त रह– इससे (तुह) तुझे (उत्तम सोंक्ख) उत्तम सुख (होहिदि) होगा ।

अर्थ – (हे भव्य !) तू इस ज्ञान मे सदा प्रीति कर, इसी मे तू सदा सन्तुष्ट रह, इससे ही तू तृप्त रह । (ज्ञान-रति, सन्तुष्टि और तृप्ति से) तुझे उत्तम सुख होगा ।

ज्ञानी अपनी आत्मा को ही स्व मानता है-

को णाम भणेंज्ज वुहो परदव्व मम इद हवदि दव्व ।
अप्पाणमप्पणो परिगह तु णियद वियाणतो ।। ७-१५-२०७

सान्वय अर्थ-(अप्पाण) अपनी आत्मा को ही (णियद) निश्चित रूप से (अप्पणो) अपना (परिगह तु) परिग्रह (वियाण तो) जानता हुआ (को णाम वुहो) कौन ज्ञानी पुरुष (भणेंज्ज) कहेगा कि (इद परदव्व) यह परद्रव्य (मम दव्व) मेरा द्रव्य (हवदि) है।

अर्थ-अपनी आत्मा को ही निश्चित रूप से अपना परिग्रह जानता हुआ कौन ज्ञानी पुरुष कहेगा कि यह पर द्रव्य मेरा द्रव्य है।

परद्रव्य मेरा नही है—

मज्झ परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेंज्ज ।
णादेव अह जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झं ।। ७-१६-२०८

मान्वय अर्थ — (जदि) **यदि** (परिग्गहो) **परिग्रह-परद्रव्य** (मज्झ) **मेरा हो** (तदो तु) **तब तो** (अह) **चैतन्य स्वभाव वाला मैं** (अजीवद) **अजीवता को** (गच्छेंज्ज) **प्राप्त हो जाऊँ** (जम्हा) **क्योकि** (अह) **मैं** (णादेव) **ज्ञाता ही हूँ** (तम्हा) **इस कारण** (परिग्गहो) **परद्रव्य रूप परिग्रह** (मज्झ ण) **मेरा नही है ।**

अर्थ — यदि परिग्रह (परद्रव्य) मेरा हो, तव तो (चैतन्य स्वभाववाला) मैं अजीवता को प्राप्त हो जाऊँ, क्योकि मैं ज्ञाता ही हूँ, इस कारण परद्रव्यरूप परिग्रह मेरा नही है ।

ज्ञानी का निश्चय–

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलय ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ।। ७-१७-२०६

सान्वय अर्थ – (छिज्जदु वा) चाहे छिद जाए (भिज्जदुवा) चाहे भिद जाए (णिज्जदु वा) चाहे कोई ले जाए (अहव) अथवा (विप्पलय जादु) नष्ट हो जाए (जम्हा तम्हा) चाहे जिस कारण से (गच्छदु) चला जाए (तहावि) तथापि (परिग्गहो) परिग्रह (मज्झ ण) मेरा नहीं है।

अर्थ – चाहे छिद जाए, चाहे भिद जाए, चाहे कोई ले जाए अथवा नष्ट हो जाए, चाहे जिस कारण से चला जाए, तथापि परिग्रह मेरा नहीं है।

ज्ञानी के धर्म का परिग्रह नहीं है–

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ ७-१८-२१०

सान्वय अर्थ – (अणिच्छो) जिसके इच्छा नहीं है–वह (अपरिग्गहो) अपरिग्रही (भणिदो) कहा है (य) और (णाणी) ज्ञानी (धम्म) धर्म को (णेच्छदे) नहीं चाहता (तेण) इसलिए (सो) वह (धम्मस्स दु) धर्म का–पुण्य का (अपरिग्गहो) परिग्रही नहीं है–किन्तु (जाणगो) धर्म का ज्ञायक (होदि) है।

अर्थ – जिसके इच्छा नहीं है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी धर्म को–पुण्य को नहीं चाहता, इसलिए वह धर्म का परिग्रही नहीं है, (किन्तु वह) धर्म का ज्ञायक है।

ज्ञानी के अधर्म का परिग्रह नही है–

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्म ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ ७-१९-२११

सान्वय अर्थ – (अणिच्छो) जिसके इच्छा नही है–वह (अपरिग्गहो) अपरिग्रही (भणिदो) कहा है (य) और (णाणी) ज्ञानी (अधम्म) अधर्म को–पाप को (णेच्छदि) नही चाहता (तेण) इसलिए (सो) वह (अधम्मस्स) अधर्म का (अपरिग्गहो) परिग्रही नहीं है–किन्तु (जाणगो) ज्ञायक (होदि) है ।

अर्थ – जिनके इच्छा नही है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी अधर्म को-पाप को नही चाहता, इसलिए वह अधर्म का परिग्रही नही है, किन्तु ज्ञायक है ।

ज्ञानी के भोजन का परिग्रह नहीं है–

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असण च णेच्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ।। ७-२०-२१२

सान्वय अर्थ – (अणिच्छो) जिसके इच्छा नही है–वह (अपरिग्गहो) अपरिग्रही (भणिदो) कहा है (च) और (णाणी) ज्ञानी (असण) भोजन को (णेच्छदे) नही चाहता (तेण) इसलिए (सो) वह (असणस्स दु) भोजन का (अपरिग्गहो) परिग्रही नहीं है– किन्तु (जाणगो) ज्ञायक (होदि) है।

अर्थ – जिसके इच्छा नही है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी भोजन को नही चाहता, इसलिए वह भोजन का परिग्रही नही है (किन्तु वह) ज्ञायक है।

ज्ञानी के पान का परिग्रह नही है–

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाण च णेच्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ।। ७-२१-२१३

मान्वय अर्थ – (अणिच्छो) जिसके इच्छा नहीं है–वह (अपरिग्गहो) अपरिग्रही (भणिदो) कहा है (च) और (णाणी) ज्ञानी (पाण) पान को (णेच्छदे) नहीं चाहता (तेण) इसलिए (सो) वह (पाणम्म दु) पान का (अपरिग्गहो) परिग्रही नहीं है–किन्तु वह (जाणगो) ज्ञायक (होदि) है।

अर्थ – जिसके इच्छा नही है, वह अपरिग्रही कहा है और ज्ञानी पान को नही चाहता, इसलिए वह पान का परिग्रही नही है, (किन्तु वह) ज्ञायक है।

ज्ञानी के परभावो का परिग्रह नही–

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालवो दु सव्वत्थ ।। ७-२२-२१४

सान्वय अर्थ – (एमादिए दु) इत्यादिक (विविहे) नाना प्रकार के (सव्वे भावे य) सब भावो को (णाणी) ज्ञानी (णेच्छदे) नहीं चाहता (सव्वत्थ) सर्वत्र (णीरालवो दु) निरालम्ब वह (णियदो जाणगभावो) निश्चित ज्ञायक भाव ही है ।

अर्थ – इत्यादिक नाना प्रकार के समस्त भावो को ज्ञानी नही चाहता । सर्वत्र निरालम्ब वह प्रतिनियत (टकोत्कीर्ण) ज्ञायक भाव ही है ।

ज्ञानी को त्रिकाल के भोगो की आकाक्षा नही है--

उप्पण्णोदयभोगो वियोगवुद्धिए[1] तस्स सो णिच्चं ।
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ।। ७-२३-२१५

सान्वय अर्थ -- (सो) वह (उप्पण्णोदयभोगो) वर्तमान काल के उदय का--कर्मोदय का भोग (तस्स) ज्ञानी के (णिच्च) सदा ही (वियोगवुद्धिए) वियोग वुद्धि से होता है (य) और (णाणी) ज्ञानी (अणागदस्स) आगामी काल के (उदयस्स) उदय की (कखा) आकाक्षा (ण कुव्वदे) नहीं करता ।

अर्थ -- वह वर्तमान काल के कर्मोदय का भोग ज्ञानी के सदा ही वियोग वुद्धि से होता है और ज्ञानी आगामी काल के उदय की आकाक्षा नही करता ।

(ज्ञानी तो मोक्ष की भी इच्छा नही करता, तब वह अन्य पदार्थों की इच्छा क्यो करेगा ?)

१--कई प्रतियो मे 'वियोग वुद्धीए' पाठ है,जो अशुद्ध हैं ।

ज्ञानी वेद्य-वेदक भाव की आकांक्षा नहीं करता–

जो वेददि वेदिज्जदि समये समये विणस्सदे उहय ।
त जाणगो दु णाणी उहय पि ण कखदि कयावि ।। ७-२४-२१६

सान्वय अर्थ – (जो) जो (वेददि) अनुभव करता है–ऐसा वेदक भाव (वेदिज्जदि) जो अनुभव किया जाता है–ऐसा वेद्यभाव (उहय) ये दोनो भाव–अर्थपर्याय की अपेक्षा (समये समये) समय-समय में (विणस्सदे) नष्ट हो जाते हैं (त) ऐसा उन दोनों भावो का (जाणगो दु णाणी) जानने वाला ज्ञानी (उहयं पि) उन दोनो भावों की (कयावि) कदापि (ण कखदि) आकांक्षा नहीं करता ।

अर्थ – जो अनुभव करता है (ऐसा वेदक भाव), जो अनुभव किया जाता है (ऐसा वेद्यभाव) ये दोनों भाव (अर्थपर्याय की अपेक्षा) समय-समय मे नष्ट हो जाते हैं। ऐसा जानने वाला ज्ञानी उन दोनो भावो की कदापि आकांक्षा नहीं करता ।

संसार शरीर भोग से विरक्त–

वधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदयेसु णाणिस्स ।
संसारदेहविसयेसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥ ७-२५-२१७

सान्वय अर्थ – (वधुवभोगणिमित्ते) वन्ध और उपभोग के निमित्तभूत (संसारदेहविसयेसु) संसार-सम्वन्धी और देह-सम्वन्धी (अज्झवसाणोदयेसु) रागादि अध्यवसानो के उदय में (णाणिस्स) ज्ञानी के (रागो) राग (णेव उप्पज्जदे) उत्पन्न नहीं होता ।

अर्थ – वन्ध और उपभोग के निमित्तभूत संसार-सम्वन्धी और देह-सम्वन्धी रागादि अध्यवसानो के उदय में ज्ञानी के राग उत्पन्न नही होता ।

ज्ञानी और अज्ञानी मे अन्तर–

णाणी रागप्पजहो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणय ॥ ७-२६-२१८

अण्णाणी पुण रत्तो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरयेण दु कद्दममज्झे जहा लोह ॥ ७-२७-२१९

सान्वय अर्थ – (णाणी) ज्ञानी (सव्वदव्वेसु) सब द्रव्यो में (हि) निश्चय ही (रागप्पजहो) राग का त्यागी होता है–वह (कम्ममज्झगदो) कर्मो के मध्य पड़ा हुआ भी (रजएण दु) कर्म रूपी रज से (णो लिप्पदि) लिप्त नहीं होता है (जहा) जिस प्रकार (कद्दममज्झे) कीचड़ के मध्य पड़ा हुआ (कणय) सोना कीचड़ में लिप्त नहीं होता (पुण) पुनः (अण्णाणी) अज्ञानी जीव (सव्वदव्वेसु) सब परद्रव्यो में (हि) निश्चय ही (रत्तो) रागी है–अतः (कम्ममज्झगदो) मन-वचन-काय के व्यापाररूप कर्मों के मध्य पड़ा हुआ (कम्मरयेण दु) कर्मरूपी रज से (लिप्पदि) लिप्त होता है (जहा) जिस प्रकार (कद्दममज्झे) कीचड़ के मध्य पड़ा हुआ (लोह) लोहा कीचड़ से लिप्त होता है ।

अर्थ – ज्ञानी मब द्रव्यो मे निश्चय ही राग का त्यागी (वीतराग) होता है, कर्मो के मध्य पडा हुआ भी कर्मरूपी रज से लिप्त नही होता है, जिस प्रकार कीचड के मध्य पडा हुआ सोना (कीचड से लिप्त नही होता) । पुन अज्ञानी सव परद्रव्यो मे निश्चय ही रागी होता है, (अत वह) कर्मो के मध्य पडा हुआ कर्मरूपी रज से लिप्त होता है, जिस प्रकार कीचड के मध्य पडा हुआ लोहा (कीचड-जग मे लिप्त होता है) ।

शख के दृष्टान्त द्वारा पूर्वोक्त का समर्थन–

भुञ्जतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्त मिस्सिए दव्वे ।
सखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं ।। ७-२८-२२०

तह णाणिस्स दु विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुञ्जतस्स वि णाण ण सक्कमण्णाणद णेदुं ।। ७-२९-२२१

जइया स एव संखो सेदसहाव सय पजहिदूण ।
गच्छेॅज्ज किण्हभाव तइया सुक्कत्तण पजहे ।। ७-३०-२२२

तह णाणी वि हु जइया णाणसहाव सय पजहिदूण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणद गच्छे ।। ७-३१-२२३

सान्वय अर्थ – (विविहे) अनेक प्रकार के (सच्चित्ताचित्त-मिस्सिए) सचित्त, अचित्त और मिश्रित, (दव्वे) द्रव्यो को (भुञ्ज-तस्स वि) भक्षण-उपभोग करने वाले (सखस्स) शख का (सेदभावो) श्वेत भाव (किण्हगो कादु) कृष्ण करना (ण वि सक्कदि) शक्य नहीं है–कृष्ण नहीं किया जा सकता (तह) उसी प्रकार (विविहे) अनेक प्रकार के (सच्चित्ताचित्तमिस्सिए) सचित्त, अचित्त और मिश्रित (दव्वे) द्रव्यो का (भुञ्जतस्स वि) उपभोग करते हुए भी (णाणिस्स दु) ज्ञानी के (णाण) ज्ञान को (अण्णाणद) अज्ञान रूप (णेदु ण सक्क) नहीं किया जा सकता (जइया) जब (स एव सखो) वही शख (सेदसहाव) श्वेत स्वभाव को (सय पजहिदूण) स्वय छोड़कर (किण्हभाव) कृष्णभाव को (गच्छेॅज्ज) प्राप्त होता है (तइया) तभी (सुक्कत्तण) शुक्लत्व को (पजहे) छोड देता है (तह) उसी प्रकार (णाणी वि) ज्ञानी भी (जइया हु) जब (णाणसहाव) अपने ज्ञान स्वभाव को (सय पजहिदूण) स्वय छोडकर (अण्णाणेण परिणदो) अज्ञानरूप परिणमित होता है (तइया) तब–वह (अण्णाणद) अज्ञान-भाव को (गच्छे) प्राप्त हो जाता है ।

अर्थ — अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्यो का उपभोग करने वाले शख का श्वेतभाव कृष्ण नही किया जा मकता। इसी प्रकार अनेक प्रकार के मचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्यो का उपभोग करते हुए ज्ञानी के ज्ञान को अज्ञानरूप नही किया जा मकता।

जब वही शख अपने श्वेत स्वभाव को स्वय छोडकर कृष्णभाव को प्राप्त होता है, तभी वह शुक्लत्व को छोड देता है। इमी प्रकार ज्ञानी भी जब अपने ज्ञानस्वभाव को स्वय छोडकर अज्ञानरूप परिणमित होता है, तब वह अज्ञानभाव को प्राप्त हो जाता है।

ज्ञानी निष्काम कर्म करता है

पुरिसो जह को वि इह वित्तिणिमित्त तु सेवदे राय ।
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। ७-३२-२२४

एमेव जीवपुरिसो कम्मरय सेवदे सुहणिमित्त ।
तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। ७-३३-२२५

जय पुण सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तण सेवदेराय ।
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। ७-३४-२२६

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थ सेवदे ण कम्मरय ।
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। ७-३५ २२७

सान्वय अर्थ – (जह) जिस प्रकार (इह) इस लोक में (को वि पुरिसो) कोई पुरुष (वित्तिणिमित्त तु) आजीविका के लिए (राय) राजा की (सेवदे) सेवा करता है (तो) तो (सो वि राया) वह राजा भी उसे (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (देदि) देता है (एमेव) इसी प्रकार (जीवपुरिसो) जीवपुरुष (सुहणिमित्त) सुख के लिए (कम्मरय) कर्म रज की (सेवदे) सेवा करता है (तो) तो (सो कम्मो वि) वह कर्म भी (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (देदि) देता है (पुण) पुन (जह) जैसे (सो च्चिय पुरिसो) वही पुरुष (वित्तिणिमित्त) आजीविका के लिए (राय) राजा की (ण सेवदे) सेवा नहीं करता है (तो) तो (सो राया) वह राजा (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (ण देदि) नहीं देता है (एमेव) इसी प्रकार (सम्मदिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (विसयत्थ) विषयो के लिए (कम्मरय) कर्मराज का (ण सेवदे) सेवन नहीं करता (तो) तो (सो कम्मो) वह कर्म उसे (सुहुप्पादे) सुख देने वाले (विविहे) नाना प्रकार के (भोगे) भोग (ण देदि) नहीं देता ।

अर्थ—जिस प्रकार इस लोक मे कोई पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा करता है, तो वह राजा भी उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग देता है, इसी प्रकार जीव पुरुष सुख के लिए कर्मरज की सेवा करता है तो वह कर्म भी उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग देता है ।

पुन जैसे वही पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा नही करता, तो वह राजा उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग नही देता है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि विषयो के लिए कर्मरज का सेवन नही करता तो वह कर्म उसे सुख देने वाले नाना प्रकार के भोग नही देता।

सम्यग्दृष्टि सप्तभय मुक्त होता है–

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ।। ७-३६-२२८

सान्वय अर्थ – (सम्मादिट्ठी जीवा) सम्यग्दृष्टि जीव (णिस्संका) निःशंक (होंति) होते है (तेण) इसलिए (णिब्भया) निर्भय होते हैं (जम्हा) क्योंकि वे (सत्तभयविप्पमुक्का) सप्त भयों से रहित होते हैं (तम्हा) इसलिए वे (दु) निश्चय ही (णिस्संका) निःशंक होते हैं।

अर्थ – सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक होते हैं, इसलिये वे निर्भय होते हैं, क्योंकि वे सप्तभय से रहित होते हैं, इसलिए वे निश्चय ही निःशंक होते हैं।

नि शक सम्यग्दृष्टि का स्वरूप–

जो चत्तारि वि पाये छिंददि ते कम्मबधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-३७-२२९

सान्वय अर्थ – (जो चेदा) **जो आत्मा** (कम्मवध मोहकरे) **कर्म-वन्ध का भ्रम उत्पन्न करने वाले** (ते चत्तारि वि) **उन चारो ही** (पाये) **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरूप पायो को** (छिंददि) **काटता है** (सो) **उसे** (णिम्सको सम्मादिट्ठी) **नि·शंक सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये ।**

अर्थ – जो आत्मा कर्म-वन्ध का भ्रम उत्पन्न करने वाले उन चारो ही (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगरूप चारो ही) पायो को काट देता है, उसे नि शक सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

निःकांक्षित सम्यग्दृष्टि

जो दु ण करेदि कंख कम्मफले तह य सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-३८-२३०

सान्वय अर्थ – (जो दु चेदा) **जो आत्मा** (कम्मफले) **कर्मों के फल की** (तह य) **तथा** (सव्वधम्मेसु) **समस्त धर्मों की** (कंख) **कांक्षा–इच्छा** (ण करेदि) **नहीं करता** (सो) **उसे** (णिक्कंखो) **निष्कांक्ष** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये ।**

अर्थ – जो आत्मा कर्मों के फल की तथा समस्त धर्मों की कांक्षा (इच्छा) नहीं करता, उसे निष्कांक्ष सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण—

जो ण करेदि दुगुञ्छ[1] चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिञ्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-३९-२३१

सान्वय अर्थ – (जो चेदा) जो आत्मा (सव्वेसिमेव) सभी (धम्माण) धर्मों–वस्तु-स्वभावों के प्रति (दुगुञ्छ) जुगुप्सा-ग्लानि (ण करेदि) नहीं करता है (सो) उसको (खलु) वस्तुतः (णिव्वि-दिगिञ्छो) निर्विचिकित्स (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (मुणेदव्वो) मननपूर्वक जानना चाहिये ।

अर्थ – जो आत्मा सभी धर्मों (वस्तु-स्वभावों) के प्रति जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं करता है, उसे वस्तुतः निर्विचिकित्स सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये।

१—जुगुप्स इत्यपि पाठः ।

अमूढदृष्टि का कथन

जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-४०-२३२

सान्वय अर्थ – (जो चेदा) जो आत्मा (सव्वभावेसु) समस्त भावो में (असम्मूढो) अमूढ एवं (सद्दिट्ठि) यथार्थ दृष्टि वाला (हवदि) होता है (मो) उसे (खलु) वास्तव में (अमूढदिट्ठी) अमूढ दृष्टि (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (मुणेदव्वो) मननपूर्वक जानना चाहिये ।

अर्थ – जो आत्मा समस्त भावो मे अमूढ एव यथार्थ दृष्टिवाला होता है, उसे वस्तुतः अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

उपगूहन का स्वरूप–

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माण ।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-४१-२३३

सान्वय अर्थ – (जो) **जो आत्मा** (सिद्धभत्तिजुत्तो) **शुद्धात्म भावनारूप सिद्धभक्ति से युक्त है** (दु) **और** (सव्वधम्माण) **रागादि विभाव धर्मों का** (उवगूहणगो) **उपगूहक–नाश करने वाला है** (सो) **उसे** (उवगूहणगारी) **उपगूहनकारी** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये ।**

अर्थ – जो आत्मा (शुद्धात्म भावनारूप) सिद्धभक्ति मे युक्त है और समस्त रागादिविभाव धर्मों का उपगूहक (नाश करने वाला) है, उसे उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

स्थितिकरण अग–

उम्मग्ग गच्छत सग पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-४२-२३४

सान्वय अर्थ – (जो चेदा) जो आत्मा (उम्मग्ग गच्छत) उन्मार्ग में जाते हुए (सग पि) स्वय अपनी आत्मा को भी (मग्गे) शिवमार्ग में (ठवेदि) स्थापित करता है (सो) उसे (ठिदिकरणाजुत्तो) स्थितिकरणयुक्त (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि (मुणेदव्वो) मननपूर्वक जानना चाहिये ।

अर्थ – जो आत्मा उन्मार्ग मे जाते हुए स्वय अपनी आत्मा को भी शिवमार्ग मे स्थापित करता है, उसे स्थितिकरण युक्त सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

वात्सल्य अग की परिभाषा–

जो कुणदि वच्छलत्त तिण्ह साहूण मोॅक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-४३-२३५

सान्वय अर्थ – (जो) **जो आत्मा** (मेॅक्खमग्गम्मि) **मोक्षमार्ग में** (तिण्ह साहूण) **तीन–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन साधनो अथवा मोक्षमार्ग के साधक तीन साधुओ–आचार्य, उपाध्याय और साधुओ के प्रति** (वच्छलत्त) **वात्सल्य** (कुणदि) **करता है** (सो) **उसे** (वच्छलभावजुदो) **वात्सल्यभाव से युक्त** (सम्मादिट्ठी) **सम्यग्दृष्टि** (मुणेदव्वो) **मननपूर्वक जानना चाहिये ।**

अर्थ – जो आत्मा मोक्षमार्ग मे तीन–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और मम्यक-चारित्र इन तीन साधनो अथवा मोक्षमार्ग के साधक तीन साधुओ–आचार्य, उपाध्याय और साधुओ के प्रति वात्सल्य करता है, उमे वात्सल्यभाव से युक्त सम्यग्दृष्टि मननपूर्वक जानना चाहिये ।

आत्मज्ञानविहारी जिनज्ञान प्रभावी है—

विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। ७-४४-२३६

सान्वय अर्थ—(जो चेदा) जो आत्मा (विज्जारहमारूढो) विद्यारूपी रथ में आरूढ हुआ (मणोरहपहेसु) मनोरथ-मार्ग में (भमइ) भ्रमण करता है (सो) उसे (जिणणापहावी) जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला (सम्मादिट्ठी) सम्यग्-दृष्टि (मुणेदव्वो) मननपूर्वक जानना चाहिये।

अर्थ—जो आत्मा विद्या (ज्ञान) रूपी रथ मे आरूढ हुआ मनोरथ-मार्ग मे भ्रमण करता है, उसे जिनेन्द्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि (मननपूर्वक) जानना चाहिये ।

इदि सत्तमो णिज्जराधियारो समत्तो

अट्ठमो बंधाधियारो

रागादि से कर्म-बन्ध होता है–

जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि ।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहि वायाम ॥ ८-१-२३७

छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताण करेदि दव्वाणमुवघाद ॥ ८-२-२३८

उवघाद कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहि ।
णिच्छयदो चितेज्ज हु किं पच्चयगो दु रयबधो ॥ ८-३-२३९

जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबधो ।
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहि ॥ ८-४-२४०

एव मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहासु चिट्ठासु ।
रायादी उवओगे कुव्वतो लिप्पदि रयेण ॥ ८-५-२४१

सान्वय अर्थ – (जह णाम) जिस प्रकार (को वि) कोई (पुरिसो) पुरुष (णेहब्भत्तो दु) तेल लगाकर (य) और (रेणुवहु-लम्मि) बहुत धूल वाले (ठाणम्मि) स्थान में (ठाइदूण) रहकर (सत्थेहि) शस्त्रो से (वायाम) व्यायाम (करेदि) करता है (तहा) तथा (तालीतलकयलिवसपिंडीओ) ताड, तमाल, केला और बाँस के समूह को (छिंददि) छेदता है (य भिददि) और भेदता है तथा (सच्चित्ताचित्ताण) सचित्त और अचित्त (दव्वाण) द्रव्यो का (उव-घाद) उपघात (करेदि) करता है (नानाविहेहि करणेहि) नाना प्रकार के करणो के द्वारा (उवघाद) उपघात (कुव्वतस्स तस्स) करते हुए उस पुरुष के (रयवघो दु) धूलि का बंध (हु) वास्तव में (किं पच्चयगो) किस कारण से होता है (णिच्छयदो) निश्चय से यह

(चिंतेज्ज) विचार करो (तम्हि णरे) उस मनुष्य के शरीर पर (सो जो दु णेहभावो) वह जो तेल की चिकनाहट है (तेण) उसके कारण (तस्स) उस मनुष्य के (रयवधो) धूलि का वन्ध होता है (सेमाहि) शेष (कायट्ठाचेंहि) काय की चेष्टाओ से (ण) रज-वन्ध नहीं होता—यह (णिच्छयदो) निश्चय से (विण्णेय) जानना चाहिये।

(एव) इसी प्रकार (वहुविहासु) नाना प्रकार की (चिट्ठासु) चेष्टाओ में (वट्टतो) प्रवर्तमान (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (उवओगे) उपयोग में (रायादी) रागादि भावो को (कुव्वतो) करता हुआ (रयेण) कर्म-रज से (लिप्पदि) लिप्त होता है।

अर्थ—जिस प्रकार कोई पुरुष शरीर मे तेल लगाकर और वहुत धूल वाले स्थान मे रहकर शस्त्रो मे व्यायाम करता है और ताड, तमाल, कदली और वास के समूह को छेदता और भेदता है तथा सचित्त और अचित्त द्रव्यो का उपघात करता है, नाना प्रकार के करणो के द्वारा उपघात करते हुए उसके धूलि का वन्ध किस कारण से होता है, यह निश्चय से विचार करो।

उस मनुष्य के शरीर पर वह जो तेल की चिकनाहट है, उसके कारण उस मनुष्य के धूलि-वन्ध होता है, काय की शेप चेष्टाओ मे नही होता—यह निश्चय से जानना चाहिये।

इसी प्रकार नाना प्रकार की चेष्टाओ मे प्रवर्तमान मिथ्यादृष्टि उपयोग मे रागादि भावो को करता हुआ कर्म-रज से लिप्त होता है।

रागादि के अभाव मे कर्म-वन्ध का अभाव—

कह् पुण सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिदे सते ।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायाम ।। ८-६-२४२

छिंददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवसपिडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताण करेदि दव्वाणमुवघाद ।। ८-७-२४३

उवघाद कुव्वतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहि ।
णिच्छयदो चिंतेज्ज दु कि पच्चयगो ण रयबधो ।। ८-८-२४४

जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबधो ।
णिच्छयदो विण्णेय ण कायचेट्ठाहि सेसाहि ।। ८-९-२४५

एव सम्मादिट्ठी वट्टतो वहुविहेसु जोगेसु ।
अकरतो उवओगे रागादी ण लिप्पदि रयेण ।। ८-१०-२४६

सान्वय अर्थ – (जह्) जिस प्रकार (पुण) पुनः (सो चेव) वही (णरो) मनुष्य (सव्वम्हि णेहे) समस्त तेल के (अवणिदे सते) दूर किये जाने पर (रेणुवहुलम्मि) वहुत धूल वाले (ठाणे) स्थान में (सत्थेहि) शस्त्रो के द्वारा (वायाम) व्यायाम (करेदि) करता है (तहा य) और (तालीतलकयन्तिवसपिडीओ) ताड, तमाल, कदली और वास के समूह को (छिंददि) छेदता है (य भिंददि) और भेदता है (सच्चित्ताचित्ताण) सचित्त और अचित्त (दव्वाण) द्रव्यो का (उवघाद) उपघात (करेदि) करता है (णाणाविहेहि) नाना प्रकार के (करणेहि) करणो से (उवघाद) उपघात (कुव्वतस्स) करते हुए (तस्स) उसके (दु) वास्तव में (कि पच्चयगो) किस कारण से (रयवधो ण) धूलि का वन्ध नहीं होता (णिच्छयदो) निश्चय से यह (चिंतेज्ज) विचार करो ।

(तम्हि णरे) उस मनुष्य के शरीर पर (जो सो दु) वह जो (णेह भावो) चिकनाई थी (तेण) उसके कारण (तस्स) उसके (रयबंधो) धूलि का बन्ध होता था (सेसाहि) शेष (कायचेट्ठाहि) काय की चेष्टाओ से (ण) धूलि-बन्ध नही होता (णिच्छयदो) यह निश्चय-पूर्वक (विण्णेय) जानना चाहिये।

(एव) इसी प्रकार (सम्मादिट्ठी) सम्यग्दृष्टि जीव (बहुविहेसु) नाना प्रकार के (जोगेसु) योगो में (वट्टतो) वर्तन–प्रवृत्ति करते हुए (उवओगे) उपयोग में (रागादी) रागादि भावो को (अकरतो) नहीं करता, इसलिए वह (रयेण) कर्म-रज से (ण लिप्पदि) लिप्त नहीं होता।

अर्थ – जिस प्रकार पुन वही मनुष्य समस्त तेल के दूर किये जाने पर बहुत धूल वाले स्थान मे शस्त्रो से व्यायाम करता है तथा ताड, तमाल, कदली और बाँस के समूह को छेदता और भेदता है, सचित्त और अचित्त द्रव्यो का उपघात करता है। नाना प्रकार के कारणो से उपघात करते हुए उसके किस कारण से धूलि का बन्ध नही होता, निश्चय से यह विचार करो।

उस मनुष्य के शरीर पर वह जो तेल की चिकनाई थी, उसके कारण उसके धूलि का बन्ध होता था, काय की शेष चेष्टाओ से धूलि-बन्ध नही होता, यह निश्चयपूर्वक जानो।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव नाना प्रकार के योगो मे वर्तन करते हुए उपयोग मे रागादि भावो को नही करता, इसलिए वह कर्म-रज से लिप्त नही होता।

ज्ञानी और अज्ञानी की पहचान–

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहि सत्तेहि ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।। ८-११-२४७

सान्वय अर्थ – (जो) **जो पुरुष** (मण्णदि) **मानता है कि** (हिंसामि) **मैं परजीव को मारता हूँ** (य) **और** (परेहि) **दूसरे** (सत्तेहि) **जीवों के द्वारा** (हिंसिज्जामि) **मैं मारा जाता हूँ** (सो) **वह पुरुष** (मूढो) **मोही है और** (अण्णाणी) **अज्ञानी है** (दु) **और** (एत्तो) **इससे** (विवरीदो) **विपरीत–जो ऐसा नहीं मानता वह** (णाणी) **ज्ञानी है।**

अर्थ – जो पुरुष मानता है कि मैं परजीव को मारता हूँ और दूसरे जीवों के द्वारा मैं मारा जाता हूँ, वह पुरुष मोही है और अज्ञानी है, और जो इससे विपरीत है (जो ऐसा नही मानता), वह ज्ञानी है ।

आयुकर्म के क्षय से ही मरण होता है–

आउक्खयेण मरण जीवाण जिणवरेहि पण्णत्त ।
आउ च ण हरसि तुम किह ते मरण कद तेंसि ।। ८-१२-२४८

आउक्खयेण मरण जीवाण जिणवरेहि पण्णत्त ।
आउ ण हरति तुह किह ते मरण कद तेहि ।। ८-१३-२४९

सान्वय अर्थ – (जीवाण) जीवो का (मरण) मरण (आउ-क्खयेण) आयुकर्म के क्षय से होता है (जिणवरेहि) जिनेन्द्रदेव ने (पण्णत्त) ऐसा बताया है (च) और (तुम) तू (आउ) उनके आयुकर्म को (ण हरसि) हरता नहीं है–तब (ते) तूने (तेसि) उन परजीवो का (मरण) मरण (किह) किस प्रकार (कद) किया (जीवाण) जीवो का (मरण) मरण (आउक्खयेण) आयुकर्म के क्षय से होता है (जिणवरेहि) जिनेन्द्रदेव ने (पण्णत्त) ऐसा बताया है–पर जीव (तुह) तेरा (आउ) आयुकर्म (ण हरति) हरते नहीं–तब (तेहि) उन्होने (ते मरण) तेरा मरण (किह) किस प्रकार (कद) किया ।

अर्थ – जीवो का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है, जिनेन्द्रदेव ने ऐसा बताया है, और तू उनके आयुकर्म को हरता नही है, तब तूने उन परजीवो का मरण किस प्रकार किया ।

जीवो का मरण आयुकर्म के क्षय से होता है, जिनेन्द्रदेव ने ऐसा बताया है, परजीव तेरा आयुकर्म हरते नही है, तब उन्होने तेरा मरण किस प्रकार किया ।

अज्ञानी और ज्ञानी–

जो मण्णदि जीवेमि य जीविस्सामि य परेहि सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।। ८-१४-२५०

सान्वय अर्थ – (जो) **जो पुरुष (मण्णदि) ऐसा मानता है कि (जीवेमि य) मैं परजीवो को जिलाता हूँ (य) और (परेहि सत्तेहिं) परजीव (जीविस्सामि) मुझे जिलाते है (सो) वह पुरुष (मूढो) मोही है (अण्णाणी) और अज्ञानी है (दु) और जो (एत्तो) इससे (विवरीदो) विपरीत है– जो ऐसा नहीं मानता वह (णाणी) ज्ञानी है ।**

अर्थ–जो पुरुष ऐसा मानता है कि मैं परजीवो को जिलाता हूँ और परजीव मुझे जिलाते हैं, वह पुरुष मोही और अज्ञानी है और जो इससे विपरीत है (जो ऐसा नहीं मानता), वह ज्ञानी है।

आयुकर्म के उदय मे ही जीवन है–

आउउदयेण जीवदि जीवो एव भणंति सव्वण्हू ।
आउ च ण देसि तुम कह् तए जीविद कद तेंसि ।। ८-१५-२५१

आउउदयेण जीवदि जीवो एव भणंति सव्वण्हू ।
आउ ण देंति तुह कहं णु ते जीविद कद तेंहि ।। ८-१६-२५२

सान्वय अर्थ – (जीवो) जीव (आउउदयेण) आयुकर्म के उदय से (जीवदि) जीता है (एव) इस प्रकार (सव्वण्हू) सर्वज्ञदेव (भणति) कहते है (तुम) तू (आउ च) अन्य को आयुकर्म (ण देसि) नहीं देता है–तव (तए) तूने (तेसि) उन पर जीवो को (कह्) किस प्रकार (जीविद) जीवित (कद) किया ।

(जीवो) जीव (आउउदयेण) आयुकर्म के उदय से (जीवदि) जीता है (एव) इस प्रकार (सव्वण्हू) सर्वज्ञदेव (भणति) कहते हैं–परजीव (तुह) तुझे (आउ) आयुकर्म (ण देति) देते नही–तब (तेंहि) उन परजीवो ने (ते) तुझे (जीविद) जीवित (कह णु) किस प्रकार (कद) किया ।

अर्थ – जीव आयुकर्म के उदय से जीता है, ऐसा सर्वज्ञदेव कहते है । तू अन्य जीवो को आयुकर्म नहीं देता, तव तूने उन पर परजीवो को किस प्रकार जीवित किया ।

जीव आयुकर्म के उदय मे जीता है, ऐसा सर्वज्ञदेव कहते है । परजीव तुझे आयुकर्म देते नही, तब उन परजीवो ने तुझे जीवित किम प्रकार किया ।

अज्ञानी और ज्ञानी का अन्तर–

जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करमि सत्ते त्ति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ।। ८-१७-२५३

सान्वय अर्थ – (जो) जो (त्ति मण्णदि) यह मानता है कि मैं (अप्पणा दु) अपने द्वारा–अपने सम्बन्ध से ही (सत्ते) परजीवो को (दुक्खिदसुहिदे) दुखी और सुखी (करेमि) करता हूँ (सो) वह (मूढो) मोही और (अण्णाणी) अज्ञानी है–जो (एत्तो दु) इससे (विवरीदो) विपरीत मानता है, वह (णाणी) ज्ञानी है ।

अर्थ – जो ऐसा मानता है कि मैं अपने द्वारा (अपने सम्बन्ध से ही) परजीवो को दुखी और सुखी करता हूँ, वह मोही और अज्ञानी है । जो इससे विपरीत मानता है, वह ज्ञानी है ।

जीव कर्म के उदय मे दुखी-सुखी होते हैं—

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्म च ण देसि तुम दुक्खिदसुहिदा किह कदा ते ।। ८-१८-२५४

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्म च ण दिंति तुम कदोसि किह दुक्खिदो तेंहि ।। ८-१९-२५५

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्म च ण दिंति तुम किह त सुहिदो कदो तेंहिं ।। ८-२०-२५६

सान्वय अर्थ – (जदि) यदि (सव्वेजीवा) सभी जीव (कम्मोदयेण) कर्म के उदय से (दुक्खिदसुहिदा) दुखी और सुखी (हवंति) होते है (च) और (तुम) तू—उन्हें (कम्म) कर्म तो (ण देसि) देता नही है—तब (ते) वे जीव—तूने (दुक्खिदसुहिदा) दुखी और सुखी (किह) किस प्रकार (कदा) किये ।

(जदि) यदि (सव्वे जीवा) सभी जीव (कम्मोदयेण) कर्म के उदय से (दुक्खिदसुहिदा) दुखी और सुखी (हवंति) होते है (च) और वे (तुम) तुझे (कम्म) कर्म (ण दिंति) देते नहीं—तब तुझे (तेंहि) उन जीवो ने (किह) किस प्रकार (दुक्खिदो) दुखी (कदोसि) किया ।

(जदि) यदि (सव्वेजीवा) सभी जीव (कम्मोदयेण) कर्म के उदय से (दुक्खिदसुहिदा) दुखी और सुखी (हवंति) होते है (च) और—वे जीव (तुम) तुझे (कम्म) कर्म (ण दिंति) नहीं देते—फिर (तेंहि) उन्होने (त) तुझे (सुहिदो) सुखी (किह) किस प्रकार (कदो) किया ।

अर्थ – यदि कर्म के उदय से सब जीव दुखी और सुखी होते हैं और तू उन्हें कर्म तो देता नहीं है, तब वे जीव तूने दुखी और सुखी किस प्रकार किये।

यदि सभी जीव कर्म के उदय से दुखी और सुखी होते हैं और वे तुझे कर्म देते नहीं, तब तुझे उन जीवों ने किस प्रकार दुखी किया।

यदि सभी जीव कर्म के उदय से दुखी और सुखी होते हैं और वे जीव तुझे कर्म तो देते नहीं हैं, तब उन्होंने तुझे सुखी कैसे किया।

मरण और दु:ख कर्मोदय से होता है–

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ।। ८-२१-२५७

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदयेण खलु[1] जीवो ।
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ।। ८-२२-२५८

सान्वय अर्थ – (जो) जो (मरदि) मरता है (य) और (जो) जो (दुहिदो) दुखी होता है (सो सव्वो) वह सब (कम्मोदयेण) कर्म के उदय से (जायदि) होता है (तम्हा दु) इसलिए (मारिदो) मैंने अमुक को मार दिया (च दुहाविदो) और मैंने अमुक को दुखी किया (इदि) ऐसा (दे) तेरा अभिप्राय (ण हु मिच्छा) क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

(जो) जो (ण मरदि) मरता नहीं (य) और (ण दुहिदो) जो दुखी नहीं होता (सो वि य जीवो) वह जीव भी (खलु) वास्तव में (कम्मोदयेण) कर्म के उदय से ही होता है (तम्हा) इसलिए (ण मारिदो) इसे मैंने नहीं मारा (च) और (णो दुहाविदो) मैंने इसे दुखी नहीं किया (इदि ण हु मिच्छा) ऐसा तेरा अभिप्राय क्या मिथ्या नहीं है ?

अर्थ – जो मरता है और जो दुखी होता है, वह सब कर्म के उदय से होता है, 'इसलिए मैंने अमुक को मार दिया और मैंने अमुक को दुखी किया' ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तव मे मिथ्या नही है ?

जो न मरता है और न जो दुखी होता है, वह जीव भी वास्तव मे कर्म के उदय से ही होता है, इसलिए 'इसे मैंने नही मारा और इसे मैंने दुखी नही किया' ऐसा तेरा अभिप्राय क्या मिथ्या नही है ?

---

1 चेव खलु इत्यपि पाठान्तरम् । चेव पाठ खलु के साथ असगत है ।

मूढबुद्धि बन्ध का कारण है—

एसा दु जा मदी दे दुक्खिसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
एसा दे मूढमदी सुहासुह वधदे कम्म ।। ८-२३-२५९

सान्वय अर्थ – (दे) तेरी (एसा दु जा) यह जो (मदी) बुद्धि है कि मैं (सत्ते) जीवों को (दुक्खिदसुहिदे) दुखी-सुखी (करेमित्ति) करता हूँ (एसा दे) यह तेरी (मूढमदी) मूढ बुद्धि ही (सुहासुह) शुभ और अशुभ (कम्म) कर्मों को (बधदे) बाँधती है ।

अर्थ – तेरी यह जो बुद्धि है कि मैं जीवों को दुखी-सुखी करता हूँ, यह तेरी मूढ बुद्धि ही शुभाशुभ कर्मों को बाँधती है ।

मिथ्याध्यवसाय बन्ध का कारण है—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि ज एवमज्झवसिद ते ।
तं पावबधग वा पुण्णस्स व बधग होदि ।। ८-२४-२६०

मारेमि जीववेमि य सत्ते ज एवमज्झवसिद ते ।
तं पावबंधग वा पुण्णस्स व बधग होदि ।। ८-२५-२६१

सान्वय अर्थ – मैं (सत्ते) जीवों को (दुक्खिदसुहिदे) दुखी और सुखी (करेमि) करता हूँ (ज एव) जो इस प्रकार का (ते) तेरा (अज्झवसिद) रागादि अध्यवसान है (त) वह अध्यवसान (पाव बधग वा) पाप का बध करने वाला (पुण्णस्स व बधग) अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला (होदि) होता है ।

मैं (सत्ते) जीवों को (मारेमि) मारता हूँ (य) और (जीववेमि) जिलाता हूँ (ज एव) जो इस प्रकार का (ते) तेरा (अज्झवसिद) रागादि अध्यवसान है (त) वह अध्यवसान (पावबधग) पाप का बन्ध करने वाला (पुण्णस्स व बधग) अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला (होदि) होता है ।

अर्थ – मैं जीवों को दुखी और सुखी करता हूँ, इस प्रकार का जो तेरा (रागादि) अध्यवसान है, वह अध्यवसान पाप का बन्ध करने वाला अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला है ।

मैं जीवों को मारता हूँ, और जिलाता हूँ, इस प्रकार का जो तेरा (रागादि) अध्यवसान है, वह अध्यवसान पाप का बन्ध करने वाला अथवा पुण्य का बन्ध करने वाला है ।

निश्चयनय से वन्ध का कारण–

अज्झवसिदेण वधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि ।
एसो बंधसमासो जीवाण णिच्छयणयस्स ।। ८-२६-२६२

मान्वय अर्थ – (सत्ते) जीवो को (मारेहि) मारो (व) अथवा (मा मारेहि) न मारो (वधो) कर्म-वन्ध (अज्झवसिदेण) अध्यवसान से होता है (एसो) यह (णिच्छयणयस्स) निश्चय नय से (जीवाण) जीवो के (बंधसमासो) बन्ध का सक्षेप है।

अर्थ – जीवो को मारो अथवा न मारो, कर्म-वन्ध अध्यवसान से होता है। यह निश्चयनय से जीवो के वन्ध का सक्षेप है।

अध्यवसान से पाप, पुण्य का वन्ध–

एवमलिये अदत्ते अवभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरदि अज्झवसाण ज तेण दु बज्झदे पाव ।। ८-२७-२६३

तह वि य सच्चे दत्ते बम्हे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
करिदि अज्झवसाण ज तेण दु बज्झदे पुण्ण ।। ८-२८-२६४

सान्वय अर्थ – (एव) इसी प्रकार–हिसा के अध्यवसान के समान (अलिये) असत्य में (अदत्ते) चोरी में (अवभचेरे) अब्रह्मचर्य में (चेव) और (परिग्गहे) परिग्रह में (ज) जो (अज्झवसाण) अध्यवसान (कीरदि) किया जाता है (तेण दु) उससे (पाव) पाप का (वज्झदे) बन्ध होता है ।

(तह वि य) और इसी प्रकार (सच्चे) सत्य में (दत्ते) अचौर्य में (वम्हे) ब्रह्मचर्य में (चेव) और (अपरिग्गहत्तणे) अपरिग्रह में (ज) जो (अज्झवसाण) अध्यवसान (कीरदि) किया जाता है (तेण दु) उससे (पुण्ण) पुण्य का (वज्झदे) बन्ध होता है ।

अर्थ – इसी प्रकार (हिसा के अध्यवसान के समान) असत्य मे, चोरी मे, अब्रह्मचर्य मे और परिग्रह मे जो अध्यवसान किया जाता है, उससे पाप का वध होता है ।

और इसी प्रकार सत्य मे, अचौर्य मे, ब्रह्मचर्य मे और अपरिग्रह मे जो अध्यवसान किया जाता है, उससे पुण्य का वन्ध होता है ।

वन्ध वस्तु से नही होता–

वत्थु पडुच्च त पुण अज्झवसाण तु होदि जीवाण ।
ण हि वत्थुदो दु वधो अज्झवसाणेण वधो त्ति ।। ८-२९-२६५

मान्वय अर्थ – (पुण) पुन (वत्थु पडुच्च) **चेतनाचेतन वाह्य वस्तु का आलम्बन लेकर** (जीवाण तु) **जीवो के** (त अज्झवसाण) **वह रागादि अध्यवसान** (होदि) **होता है** (दु) **वास्तव में** (वत्थुदो) **वस्तु से** (ण हि वधो) **वन्ध नहीं होता** (अज्झवसाणेण) **अध्यवसान से ही** (वधो त्ति) **बन्ध होता है ।**

अर्थ – पुन (चेतनाचेतन वाह्य) वस्तु का आलम्वन लेकर जीवो के वह रागादि अध्यवसान होता है । वास्तव मे वस्तु से वन्ध नही होता, अध्यवसान से ही वन्ध होता है ।

मोह-बुद्धि निरर्थक है-

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बधोमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढमदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ।। ८-३०-२६६

सान्वय अर्थ – मैं (जीवे) जीवो को (दुक्खिदसुहिदे) दुखी-सुखी (करेमि) करता हूँ (बधेमि) बँधवाता हूँ (तह) तथा (विमोचेमि) छुड़ाता हूँ (दे) तेरी (जा एसा) जो ऐसी (मूढमदी) मूढ़बुद्धि है (सा) वह (णिरत्थया) निरर्थक है–अत (दु) वास्तव में-वह (मिच्छा) मिथ्या है।

अर्थ – मैं जीवो को दुखी-सुखी करता हूँ, उन्हें बँधवाता हूँ, छुडाता हूँ, तेरी जो ऐसी मूढबुद्धि है, वह निरर्थक है, अतः वास्तव मे वह मिथ्या है।

पर कर्तृत्व का अहकार निरर्थक है–

अज्झवसाणणिमित्त जीवा वज्झति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चति मोंक्खमग्गे ठिदा य ते किं करोसि तुम ।। ८-३१-२६७

सान्वय अर्थ – (जदि हि) **यदि वास्तव में** (अज्झवसाणणिमित्त) **अध्यवसान के निमित्त से** (जीवा) **जीव** (कम्मणा) **कर्मो से** (वज्झति) **बँधते है** (य) **और** (मोंक्खमग्गे) **मोक्षमार्ग में** (ठिदा) **स्थित** (तें) **वे** (मुच्चति) **कर्मो से मुक्त होते है–तब** (तुम) **तू** (किं करोसि) **क्या करता है ?**

अर्थ – यदि वास्तव मे अध्यवमान के निमित्त मे जीव कर्मो से वधते है और मोक्षमार्ग मे स्थित वे कर्मो से मुक्त होते है, तव तू क्या करता है ? (अर्थात् दूसरो को वाँधने-छोडने का तेरा अध्यवसान निष्प्रयोजन रहा) ।

जीव निज को पररूप मानता है–

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइये ।
देवमणुवे य सव्वे पुण्ण पाव अणेयविह ।। ८-३२-२६८

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोग च ।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाण ।। ८-३३-२६९

सान्वय अर्थ – (जीवो) जीव (अज्झवसाणेण) अध्यवसान के द्वारा (तिरियणेरइये) तिर्यञ्च, नारक (य) और (देवमणुवे) देव, मनुष्य (सव्वे) इन सब पर्यायरूप (अणेयविह) और अनेक प्रकार के (पुण्ण पाव) पुण्य और पाप (सव्वे) इन सबरूप (करेदि) अपने आपको करता है (तहा च) तथा - उसी प्रकार (जीवो) जीव (अज्झवसाणेण) अध्यवसान के द्वारा (धम्माधम्म) धर्म-अधर्म (जीवाजीवे) जीव-अजीव (अलोगलोग च) लोक और अलोक (सव्वे) इन सबरूप (अप्पाण) अपने को (करेदि) करता है ।

अर्थ – जीव अध्यवमान के द्वारा तिर्यञ्च, नारक, देव और मनुष्य इन सब रूप और अनेक प्रकार के पुण्य और पाप इन सब रूप अपने आपको करता है ।

तथा उसी प्रकार जीव अध्यवसान के द्वारा धर्म-अधर्म, जीव-अजीव, लोक और अलोक इन सब रूप अपने को करता है ।

जिनके अध्यवसान नही, उनके कर्म-वन्ध नही—

एदाणि णत्थि जेसि अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पति ।। ८-३४-२७०

सान्वय अर्थ — (एदाणि) **ये पूर्व में कहे गये अध्यवसान** (एवमादीणि) **तथा इसी प्रकार के अन्य भी** (अज्झवसाणाणि) **अध्यवसान** (जेसि) **जिनके** (णत्थि) **नहीं हैं** (ते मुणी) **वे मुनि** (असुहेण) **अशुभ** (य) **और** (सुहेण) **शुभ** (कम्मेण) **कर्म से** (ण लिप्पति) **लिप्त नहीं होते ।**

अर्थ — ये पूर्व मे कहे गये अध्यवसान तथा इसी प्रकार के अन्य भी अध्यवसान जिनके नही है वे मुनि अशुभ और शुभ कर्म से लिप्त नही होते हैं ।

अध्यवमान के नामान्तर–

वुद्धी ववसाओ वि य अज्झवसाण[1] मदी य विण्णाण ।
एक्कट्ठमेव सव्व चित्त भावो य परिणामो ।। ८-३५-२७१

सान्वय अर्थ – (वुद्धी) वुद्धि (ववसाओ वि य) **व्यवसाय** (अज्झवसाण) **अध्यवसान** (मदी य) **मति** (विण्णाण) **विज्ञान** (चित्त) **चित्त** (भावो) **भाव** (य) **और** (परिणामो) **परिणाम** (सव्व) **ये सब** (एक्कट्ठमेव) **एकार्थक हैं।**

अर्थ – बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव और परिणाम ये सव एकार्थक हैं (अर्थात् जीव का परिणाम अध्यवसान है)।

१– अज्झवमाण-अध्यवमान

अतिहर्षविषादाभ्यामधिकमवमानम् । चिन्तनमवमानम् । विशे । रागम्नेहमयात्मिकेऽध्यवसाये । रागभयम्नेहभेदात् त्रिविधमध्यवमानम् । अध्यवमान जीव परिणाम ।

—अभि राजेंद्र २३०

निश्चयाश्रित ही निर्वाण को पाते हैं–

एव ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावति णिव्वाण ।। ८-३६-२७२

सान्वय अर्थ – (एव) इस प्रकार (ववहारणओ) व्यवहार नय (णिच्छयणयेण) निश्चय नय के द्वारा (पडिसिद्धो) निषिद्ध (जाण) जानो (पुण) पुन (णिच्छयणयासिदा) निश्चय नय के आश्रित (मुणिणो) मुनि (णिव्वाण) निर्वाण (पावति) प्राप्त करते है।

अर्थ – इस प्रकार व्यवहारनय निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध जानो, पुनः निश्चयनय के आश्रित मुनि निर्वाण प्राप्त करते हैं।

अभव्य का चारित्र व्यर्थ है—

वदसमिदी गुत्तीओ सीलतव जिणवरेहि पण्णत्त ।
कुव्वतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ।। ८-३७-२७३

सान्वय अर्थ — (जिणवरेहि) **जिनेन्द्रदेव के द्वारा** (पण्णत्त) **कथित** (वदसमिदीगुत्तीओ) **व्रत, समिति, गुप्ति** (सीलतव) **शील और तप** (कुव्वतो वि) **करता हुआ भी** (अभव्वो) **अभव्य जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (मिच्छदिट्ठी दु) **मिथ्यादृष्टि ही है।**

अर्थ—जिनेन्द्रदेव के द्वारा कथित व्रत, समिति, गुप्ति, शील और तप को करता हुआ भी अभव्य जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

अभव्य का शास्त्र-पाठ गुणकारी नहीं है–

मोक्ख असद्दहतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेंज्ज ।
पाठो ण करेदि गुण असद्दहतस्स णाण तु ।। ८-३८-२७४

सान्वय अर्थ – (जो) जो (अभवियसत्तो) **अभव्य जीव है वह** (अधीयेंज्ज दु) **शास्त्र तो पढता है, किन्तु** (मोक्ख) **मोक्ष का** (असद्दहतो) **श्रद्धान नही करता** (तु) **तो** (णाण असद्दहतस्स) **ज्ञान का श्रद्धान न करने वाले उस अभव्य जीव का** (पाठो) **पाठ** (गुण) **गुण-लाभ** (ण करेदि) **नहीं करता है।**

अर्थ – जो अभव्यजीव है वह शास्त्र तो पढता है, किन्तु मोक्षतत्त्व का श्रद्धान नही करता तो ज्ञान का श्रद्धान न करने वाले उस अभव्य जीव का शास्त्र-पाठ [illegible] करता है।

अभव्य की श्रद्धा निरर्थक है—

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ।। ८-३९-२७५

सान्वय अर्थ – (सो) वह अभव्य जीव (भोगणिमित्तं धम्मं) भोग के निमित्तभूत धर्म का ही (सद्दहदि य) श्रद्धान करता है (पत्तियदि य) उसी की प्रतीति करता है (रोचेदि य) उसी की रुचि करता है (तह पुणो वि) तथा पुनः (फासेदि य) उसी का स्पर्श करता है (ण हु कम्मक्खयणिमित्तं) परन्तु कर्म-क्षय के निमित्त रूप धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श नहीं करता।

अर्थ – वह अभव्य जीव भोग के निमित्तभूत धर्म का ही श्रद्धान करता है, (उसी की) प्रतीति करता है, (उसी की) रुचि करता है तथा पुनः (उसी का) स्पर्श करता है, परन्तु कर्म-क्षय के निमित्तरूप (धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रुचि और स्पर्श) नहीं करता।

व्यवहार और निश्चय का स्वरूप–

आयारादी णाण जीवादी दसण च विण्णेय ।
छज्जीवणिक च तहा भणदि चरित्त तु ववहारो ।। ८-४०-२७६

आदा हु मज्झ णाण आदा मे दसणं चरित्त च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे सवरो जोगो ।। ८-४१-२७७

मान्वय अर्थ – (आयारादी) **आचारांग आदिशास्त्र** (णाण) **ज्ञान है** (जीवादी) **जीवादि तत्त्व** (दसण च) **दर्शन** (विण्णेय) **जानना चाहिये** (च) **और** (छज्जीवणिक) **छह जीव निकाय** (चरित्त) **चारित्र है** (तहा तु) **इस प्रकार तो** (ववहारो) **व्यवहारनय** (भणदि) **कहता है ।**

(हु) **निश्चय से** (मज्झ आदा) **मेरी आत्मा ही** (णाण) **ज्ञान है** (मे आदा) **मेरी आत्मा ही** (दसण चरित्त च) **दर्शन और चारित्र है** (आदा) **मेरी आत्मा ही** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान है–और** (मे आदा) **मेरी आत्मा ही** (सवरो जोगो) **संवर और योग है ।**

अर्थ – आचारांग आदि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्त्व दर्शन जानना चाहिये और छह जीवनिकाय चारित्र है—इस प्रकार तो व्यवहारनय कहता है।

निश्चय से मेरी आत्मा ही ज्ञान है, मेरी आत्मा ही दर्शन और चारित्र है, मेरी आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरी आत्मा ही संवर और योग है (यह निश्चयनय का कथन है) ।

भावकर्म से रागादि परिणति--

जह फलिहमणि विसुद्धो ण सय परिणमदि रागमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहि दु सो रत्तादीहि दव्वेहि ।। ८-४२-२७८
एव णाणी सुद्धो ण सय परिणमदि रागमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहि दु सो रागादीहि दोसेहिं ।। ८-४३-२७९

सान्वय अर्थ -- (जह) जैसे (फलिहमणि) स्फटिकमणि (विसुद्धो) विशुद्ध है, वह (रागमादीहिं) रक्तादि रूप मे (सय) स्वय (ण परिणमदि) परिणत नही होती (दु) परन्तु (सो) वह (अण्णेहिं) अन्य (रत्तादीहि दव्वेहि) लाल आदि वर्णवाले द्रव्यो से (राइज्जदि) लाल आदि परिणत होती है (एव) इसी प्रकार (णाणी) ज्ञानी (सुद्धो) स्वयं तो शुद्ध है, वह (रागमादीहिं) रागादि रूप (सय) अपने आप (ण परिणमदि) परिणमन नहीं करता (दु) परन्तु (सो) वह (अण्णेहि) अन्य (रागादीहि दोसेहिं) रागादि दोषो से (राइज्जदि) राग रूप परिणमन करता है ।

अर्थ -- जैसे स्फटिक मणि विशुद्ध है, वह स्वय लाल आदि वर्ण रूप से परिणत नही होती, परन्तु वह अन्य लाल आदि वर्ण वाले द्रव्यो से लाल आदि रूप परिणमन करती है । इसी प्रकार ज्ञानी (आत्मा स्वय तो) शुद्ध है । वह रागादि रूप स्वय परिणमन नही करता, परन्तु वह अन्य रागादि दोषो से राग-रूप परिणमन करता है ।

ज्ञानी रागादि का कर्त्ता नही है–

ण वि रागदोसमोह कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसि भावाणं ।। ८-४४-२८०

सान्वय अर्थ – (णाणी) ज्ञानी (ण वि) न तो (रागदोसमोह) राग, द्वेष, मोह को (कसायभाव वा) अथवा कषाय भाव को (सय) स्वयं (अप्पणो) निजरूप (कुव्वदि) करता है (तेण) इसलिए (सो) वह ज्ञानी (तेसि भावाण) उन भावो का (कारगो ण) कर्त्ता नहीं है ।

अर्थ – ज्ञानी राग, द्वेष मोह को अथवा कषाय भाव को स्वय निजरूप नही करता है इसलिए वह उन भावो का कर्त्ता नही है ।

अज्ञानी रागादि का कर्ता है –

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहि दु परिणमंतो रागादी बंधदि पुणो वि ।। ८-४५-२८१

सान्वय अर्थ – (रागम्हि य) राग के होने पर (दोसम्हि य) द्वेष के होने पर (कसायकम्मेसु चेव) और कषाय कर्मों के होने पर (जे भावा) जो भाव होते हैं (तेहि दु) उन रूप (परिणमंतो) परिणमन करता हुआ-अज्ञानी (रागादी) रागादि को (पुणो वि) बार-बार (बंधदि) बाँधता है ।

अर्थ – राग के होने पर, द्वेष के होने पर और कषाय कर्मों के होने पर जो भाव होते हैं, उन रूप परिणमन करता हुआ (अज्ञानी) रागादि को बार-बार बाँधता है ।

रागादि मे कर्मबन्ध होता है—

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं दु परिणमंतो रागादी बधदे चेदा ।। ८-४६-२८२

सान्वय अर्थ – (रागम्हि य) राग के होने पर (दोसम्हि य) द्वेष के होने पर (कसायकम्मेसु चेव) और कषाय कर्मों के होने पर (जे भावा) जो रागादि परिणाम होते है (तेहिं दु) उनरूप (परिणमतो) परिणमन करता हुआ (चेदा) आत्मा (रागादी) रागादि को (बधदे) बाँधता है ।

अर्थ – राग, द्वेप और कपाय कर्मरूप (द्रव्यकर्म के उदय) होने पर जो रागादि परिणाम होते है, उन रूप परिणमन करता हुआ आत्मा रागादि को बाँधता है ।

(निष्कर्ष यह है कि कर्म-बन्ध के कारण रागादि भाव होते है और रागादि भाव कर्म-बन्ध का कारण हैं ।)

विपकुम्भ और अमृतकुम्भ—

पडिकमणं पडिसरण पडिहरण धारणा णियत्ती य ।
णिदा गरुहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुभो ।। ९-१८-३०६

अपडिकमणमपडिसरणमप्पडिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिदागरुहासोही अमयकुभो ।। ९-२०-३०७

सान्वय अर्थ – (पडिकमण) प्रतिक्रमण (पडिसरण) प्रतिसरण (पडिहरण) परिहार (धारणा) धारणा (णियत्ती) निवृत्ति (णिदा) निन्दा (गरुहा) गर्हा (य) और (सोही) शुद्धि (अट्ठविहो) यह आठ प्रकार का (विसकुभो) विषकुम्भ (होदि) होता है ।

(अपडिकमण) अप्रतिक्रमण (अपडिसरण) अप्रतिसरण (अप्पडिहारो) अपरिहार (अधारणा) अधारणा (अणियत्ती) अनिवृत्ति (य) और (अणिदा) अनिन्दा (अगरुहा) अगर्हा (चेव) और (असोही) अशुद्धि-ये आठ (अमयकुभो) अमृतकुम्भ हैं ।

अर्थ – प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि—यह आठ प्रकार का विपकुम्भ है (क्योकि इसमे कर्तृत्वबुद्धि होती है)।

अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिन्दा, अगर्हा और अशुद्धि—ये आठ अमृतकुम्भ है (क्योकि इसमे कर्तृत्व का निषेध है) ।

इदि णवमो मोक्खाधियारो समत्तो

दहमो सव्वविसुद्ध णाणाधियारो

जीव अपने परिणामों का कर्त्ता है–

दविय ज उप्पज्जदि गुणेहि त तेहि जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु य पज्जएहि कणयमणण्णमिह ।। १०-१-३०८

जीवस्साजीवस्स य जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते ।
तं जीवमजीव वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ।। १०-२-३०९

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्ज ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण सो होदि ।। १०-३-३१०

कम्म पडुच्च कत्ता कत्तार तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पज्जंते णियमा सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा ।। १०-४-३११

मान्वय अर्थ – (ज दव्व) जो द्रव्य (गुणेहि) जिन गुणों से (उप्पज्जदि) उत्पन्न होता है (त) उसे (तेहि) उन गुणो से (अणण्ण) अनन्य (जाणसु) जानो (जह य) जैसे (इह) लोक में (कडयादीहिं पज्जएहि दु) कटक आदि पर्यायो से (कणय) स्वर्ण (अणण्ण) भिन्न नहीं है (जीवस्साजीवस्स य) जीव और अजीव के (जे परिणामा दु) जो परिणाम (सुत्ते) सूत्र में (देसिदा) कहे है (तेहि) उन परिणामो से (त जीवमजीव वा) उस जीव और अजीव को (अणण्ण) अनन्य (वियाणाहि) जानो (जम्हा) क्योकि (सो आदा) वह आत्मा (कुदोचि वि) किसी से (ण उप्पण्णो) उत्पन्न नहीं हुआ (तेण) इसलिए (कज्ज ण) वह किसी का कार्य नहीं है (किंचि वि) किसी अन्य को (ण उप्पादेदि) उत्पन्न नहीं करता (तेण) इस कारण (सो) वह-आत्मा (कारणमवि) किसी का कारण भी (ण होदि) नहीं है (णियमा) नियम से (कम्म पडुच्च) कर्म का आश्रय करके (कत्ता) कर्त्ता होता है (तह) तथा (कत्तार पडुच्च) कर्त्ता का आश्रय करके

(कम्माणि उप्पज्जते) **कर्म उत्पन्न होते हैं (अण्णा सिद्धी दु) कर्त्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि (ण दिस्सदे) नहीं देखी जाती।**

अर्थ – जो द्रव्य जिन गुणो से उत्पन्न होता है, उसे उन गुणो से अनन्य जानो। जैसे लोक मे कटक आदि पर्यायो से स्वर्ण भिन्न नही है। जीव और अजीव के जो परिणाम सूत्र मे कहे हैं, उन परिणामो से उस जीव और अजीव को अनन्य जानो, क्योकि वह आत्मा किसी मे उत्पन्न नही हुआ, इसलिए वह किसी का कार्य नही है, किसी अन्य को उत्पन्न नही करता, इस कारण वह किसी का कारण भी नही है। नियम से कर्म का आश्रय करके कर्त्ता होता है तथा कर्त्ता का आश्रय करके कर्म उत्पन्न होते हैं। कर्त्ता-कर्म की अन्य कोई सिद्धि नही देखी जाती।

आत्मा और कर्म-प्रकृति का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध—

चेदा दु पयडीअट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि ।
पयडी वि चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि ।। १०-५-३१२

एवं वधो य दोण्ह पि अण्णोण्णपच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायदे ।। १०-६-३१३

सान्वय अर्थ – (चेदा दु) यह आत्मा (पयडीअट्ठ) प्रकृति के निमित्त से (उप्पज्जदि) उत्पन्न होता है (विणस्सदि) और नष्ट होता है (पयडी वि) तथा वे कर्म प्रकृतियाँ भी (चेदयट्ठ) आत्मा के निमित्त से (उप्पज्जदि) उत्पन्न होती है (विणस्सदि) तथा विनाश को प्राप्त होती है (एव य) इस प्रकार (अण्णोण्णपच्चया) एक दूसरे के निमित्त से (दोण्ह पि) दोनो का (अप्पणो पयडीए य) आत्मा और कर्म प्रकृतियो का (वधो) वन्ध (हवे) होता है (तेण) उस वन्ध से (ससारो) संसार (जायदे) होता है ।

अर्थ—यह आत्मा प्रकृति के निमित्त से उत्पन्न होता है और नष्ट होता है तथा वे कर्मप्रकृतियाँ भी आत्मा के निमित्त से उत्पन्न होती हैं और विनाश को प्राप्त होती हैं। इस प्रकार एक दूसरे के निमित्त से आत्मा और कर्मप्रकृतियाँ-दोनो का वन्ध होता है। उस वन्ध से ससार होता है।

ज्ञाता, दृष्टा, मुनि कैसे होता है ?—

जा एस पयडीअट्ठं चेदगो ण विमुञ्चदि ।
अयाणओ हवे तावं मिच्छादिट्ठी असंजदो ।। १०-७-३१४

जदा विमुञ्चदे चेदा कम्मफलमणंतयं ।
तदा विमुत्तो हवदि जाणगो पस्सगो मुणी ।। १०-८-३१५

सान्वय अर्थ—(जा) जब तक (एस चेदगो) यह आत्मा (पयडी-अट्ठ) कर्मप्रकृति निमित्तक उत्पत्ति और विनाश को (ण विमुञ्चदि) नहीं छोड़ता (ताव) तब तक (अयाणओ) अज्ञानी (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि और (असजदो) असयत (हवे) है (जदा) जब (चेदा) आत्मा (अणतय कम्मफल) अनन्त कर्मफल को (विमुञ्चदे) छोड़ देता है (तदा) तब वह (विमुत्तो) बन्ध से मुक्त हुआ (जाणगो) ज्ञाता (पस्सगो) दृष्टा और (मुणी) संयत हो जाता है ।

अर्थ—जब तक यह आत्मा कर्मप्रकृति के निमित्त से होने वाले उत्पत्ति और विनाश को नही छोडता, तब तक वह अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असयत (रहता) है । जब आत्मा अनन्त कर्मफल को छोड देता है, तब वह बन्ध से मुक्त हुआ ज्ञाता, दृष्टा और सयत (हो जाता) है ।

ज्ञानी कर्म-फल को जानता है–

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि ।
णाणी पुण कम्मफल जाणदि उदिद ण वेदेदि ।। १०-९-३१६

सान्वय अर्थ–(अण्णाणी दु) **अज्ञानी** (पयडिसहावट्ठिदो) **प्रकृति के स्वभाव में स्थित हुआ** (कम्मफल) **कर्म के फल को** (वेदेदि) **भोगता है** (पुण) **और** (णाणी) **ज्ञानी** (उदिद) **उदय में आये हुए** (कम्मफल) **कर्म के फल को** (जाणदि) **जानता है** (ण वेदेदि) **भोगता नहीं है ।**

अर्थ–अज्ञानी प्रकृति के स्वभाव मे स्थित हुआ (हर्ष, विषाद से तन्मय हुआ) कर्म के फल को भोगता है और ज्ञानी उदय मे आये हुए कर्म के फल को जानता है, भोगता नही है ।

अभव्य अपने स्वभाव को नही छोडता–

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि ।
गुडदुद्धं पि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ।। १०-१०-३१७

सान्वय अर्थ – (अभव्वो) अभव्य जीव (सत्थाणि) शास्त्रो को (सुट्ठु) अच्छी तरह (अज्झाइदूण वि) पढकर भी (पर्याड) प्रकृति स्वभाव को (ण मुयदि) नहीं छोडता-जैसे (पण्णया) सर्प (गुडदुद्ध) गुड़मिश्रित दूध को (पिवता पि) पीते हुए भी (णिव्विसा) विषरहित (ण होंति) नहीं होते ।

अर्थ – अभव्य जीव शास्त्रो को भलीभाँति पढकर भी प्रकृति स्वभाव को नही छोडता । जैसे सर्प गुडमिश्रित दूध को पीते हुए भी विषरहित नही होते ।

ज्ञानी कर्म-फल को नही भोगता—

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणादि ।
महुर कडुयं बहुविहमवेदगो तेण सो होदि ।। १०-११-३१८

सान्वय अर्थ – (णिव्वेयसमावण्णो) **वैराग्य को प्राप्त** (णाणी) **ज्ञानी** (महुर) **मधुर** (कडुय) **कटुक** (बहुविह) **अनेक प्रकार के** (कम्मप्फल) **कर्मफल को** (वियाणादि) **जानता है** (तेण) **इसलिए** (सो) **वह** (अवेदगो) **अवेदक-कर्मफल का भोक्ता नहीं** (होदि) **है।**

अर्थ—वैराग्य को प्राप्त ज्ञानी मधुर, कटुक अनेक प्रकार के कमफल को जानता है, इसलिए वह कर्म-फल का भोक्ता नही है।

ज्ञानी पुण्य, पाप को जानता है—

ण वि कुव्वदि ण वि वेददि णाणी कम्माइ बहुप्पयाराइ ।
जाणदि पुण कम्मफलं बध पुण्ण च पाव च ।। १०-१२३१६

सान्वय अर्थ — (णाणी) ज्ञानी (वहुप्पयाराइ) बहुत प्रकार के (कम्माइ) कर्मों को (ण वि कुव्वदि) न तो करता है (ण वि वेददि) न भोगता ही है (पुण) किन्तु वह (पुण्ण च पाव च) पुण्य और पापरूप (बध) कर्मबन्ध को (कम्मफल) और कर्मफल को (जाणदि) जानता है ।

अर्थ — ज्ञानी वहुत प्रकार के कर्मों को न तो करता है, न भोगता ही है, किन्तु वह पुण्य और पापरूप कर्म-बन्ध को और कर्म-फल को जानता है ।

ज्ञानी कर्त्ता भोक्ता नही है–

दिट्ठी सय पि णाण अकारय तह अवेदय चेव ।
जाणदि य बधमोॅक्ख कम्मुदय णिज्जर चेव ।। १०-१३-३२०

सान्वय अर्थ – **जैसे** (दिट्ठी) **नेत्र-दृश्य से भिन्न होने से वह दृश्य को न करता है, न अनुभव करता है** (तह) **उसी प्रकार** (णाण) **ज्ञान-कर्म से भिन्न होने के कारण** (सय पि) **स्वयं** (अकारय) **कर्मों का कर्त्ता नहीं है** (अवेदय चेव) **और उनका भोक्ता भी नहीं है–वह तो** (बध मोॅक्ख) **बन्ध, मोक्ष** (य) **और** (कम्मुदय) **कर्म के उदय** (णिज्जर चेव) **और निर्जरा को** (जार्णाद) **जानता है ।**

अर्थ – (जैसे) नेत्र (दृश्य से भिन्न होने से वह दृश्य को न करता है, न अनुभव करता है) उसी प्रकार ज्ञान (कर्म से भिन्न होने के कारण) स्वय कर्मो का कर्त्ता नही है और उनका भोक्ता भी नही है (वह तो) वन्ध, मोक्ष, कर्म के उदय और निर्जरा को जानता है ।

विशेष – *अव इससे आगे ग्रन्थ के अन्त तक चूलिका का व्यारव्यान करते है । (विशेष व्यारव्यान, उक्त, अनुक्त व्यारव्या अथवा उक्तानुक्त अर्थ का मक्षिप्त व्यारव्यान* (सार) *चूलिका कहलाती है ।)*

कर्तृत्व मानने वालो को मोक्ष नही—

लोगस्स कुणदि विण्हू सुरणारय तिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काये ।। १०-१४-३२१

लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो ।
लोगस्स कुणदि विण्हू समणाणं अप्पओ कुणदि ।। १०-१५-३२२

एव ण को वि मोँक्खो दीसदि लोयसमणाणं दोण्हं पि ।
णिच्चं कुव्वंताण सदेवमणुयासुरे लोगे ।। १०-१६-३२३

सान्वय अर्थ — (लोगस्स) **लोक के मत में** (सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते) **सुर, नारक, तिर्यञ्च और मनुष्य प्राणियो को** (विण्हू) **विष्णु** (कुणदि) **करता है** (य) **और** (जदि) **यदि** (समणाण पि) **श्रमणो के मतानुसार भी** (अप्पा) **आत्मा** (छव्विहे काये) **छह काय के जीवो को** (कुव्वदि) **करता है—तो** (एव) **इस प्रकार** (लोगसमणाण) **लोक और श्रमणो में** (सिद्धत पडि) **सिद्धान्त की दृष्टि से** (विमेसो) **अन्तर** (ण दिस्सदि) **नहीं दीखता** (लोगस्स) **लोक के मत में** (विण्हू) **विष्णु** (कुणदि) **करता है और** (समणाण) **श्रमणो के मत में** (अप्पओ) **आत्मा** (कुणदि) **करता है** (एव) **इस प्रकार** (सदेवमणुयासुरे लोगे) **देव, मनुष्य और असुर लोको को** (णिच्च कुव्वताण) **सदा करते हुए** (लोयसमणाण दोण्ह पि) **लोक और श्रमण दोनो का भी** (को वि मोँक्खो) **कोई मोक्ष** (ण दीसदि) **नहीं दिखाई देता ।**

अर्थ — लोक के मत मे सुर, नारक, तिर्यञ्च और मनुष्य प्राणियो को विष्णु करता है और यदि श्रमणो के मतानुसार भी आत्मा छह काय के जीवो को (जीवो के कार्यों को) करता है तो इस प्रकार लोक और श्रमणो मे सिद्धान्तो की दृष्टि से कोई अन्तर नही दीखता । लोक के मत मे विष्णु करता है और श्रमणो के मत मे आत्मा करता है । इस प्रकार देव, मनुष्य और असुर लोको को सदा करते हुए (कर्त्ताभाव से प्रवर्त्तमान) लोक और श्रमण दोनो का भी कोई मोक्ष दिखाई नही देता ।

ज्ञानी की मान्यता—

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदत्था ।
जाणंति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमेत्तमवि ।। १०-१७-३२४

मान्वय अर्थ—अज्ञानी जन (ववहारभासिदेण दु) व्यवहार नय से (परदव्व मम) परद्रव्य मेरा है, ऐसा (भणति) कहते हैं (य) और (विदिदत्था) पदार्थ के स्वरूप को जानने वाले—ज्ञानीजन (दु) तो (जाणति) जानते हैं कि (णिच्छयेण) निश्चय नय से (इह) इस ससार में (परमाणुमेत्तं) परमाणुमात्र (अवि) भी (ण) मेरा नहीं है ।

अर्थ—(अज्ञानी जन) व्यवहार नय से 'परद्रव्य मेरा है' ऐसा कहते हैं और पदार्थ के स्वरूप को जानने वाले ज्ञानी जन तो जानते हैं कि निश्चयनय से इस ससार मे परमाणुमात्र कुछ भी मेरा नही है ।

परद्रव्य को अपना मानने वाला ज्ञानी मिथ्यादृष्टि है—

जह को वि णरो जंपदि अम्हाणंगामविसयणयररट्ठं ।
ण य होंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा ।। १०-१८-३२५

एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवदि एसो ।
जो परदव्व मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि ।। १०-१९-३२६

तम्हा ण मे त्ति णच्चा दोण्हं एदाण कत्तिववसाओ ।
परदव्वे जाणंतो जाणेज्जा दिट्ठिरहिदाणं ।। १०-२०-३२७

सान्वय अर्थ—(जह) जैसे (को वि णरो) कोई मनुष्य (जपदि) कहता है—कि यह (अम्हाण) हमारा (गाम विसयणयर रट्ठं) ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है (दु) किन्तु (ताणि) वे (तस्स) उसके (ण य होंति) नहीं है (य) और (सो अप्पा) वह आत्मा (मोहेण) मोह से (भणदि) ऐसा कहता है (एमेव) इसी प्रकार (जो णाणी) जो ज्ञानी (परदव्व मम) परद्रव्य मेरा है (इदि जाणंतो) यह जानता हुआ (अप्पय कुणदि) परद्रव्य को निजरूप कर लेता है (एसो) वह ज्ञानी (णिस्संसय) असंदिग्धरूप से (मिच्छदिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (हवदि) होता है (तम्हा) इस कारण से (ण मे त्ति) ये परद्रव्य मेरे नहीं है यह (णच्चा) जानकर (एदाण दोण्ह) लोक और श्रमण इन दोनो के (परदव्वे) परद्रव्य में (कत्तिववसाओ) कर्तृत्व के व्यवसाय को (जाणतो) जानते हुए (जाणेज्जा) समझो कि यह व्यवसाय (दिट्ठिरहिदाण) मिथ्यादृष्टियो का है ।

अर्थ—जैसे कोई पुरुष कहता है कि यह हमारा ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है किन्तु वस्तुत वे उसके नही है, तथापि वह आत्मा मोह से ऐसा कहता है। इसी प्रकार जो ज्ञानी 'परद्रव्य मेरा है' यह जानता हुआ परद्रव्य को निजरूप कर लेता है, वह ज्ञानी नि सन्देह मिथ्यादृष्टि है, इसलिए 'ये परद्रव्य मेरे नही है' यह जानकर लोक और श्रमण इन दोनों के परद्रव्य मे कर्तृत्व के व्यवसाय को जानते हुए समझो कि यह व्यवसाय मिथ्यादृष्टियो का है।

भाव कर्म का कर्त्ता जीव है—

मिच्छत्त जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाण ।
तम्हा अचेदणा दे पयडी णणु कारगा पत्ता ।। १०-२१-३२८

अहवा एसो जीवो पोॅग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्त ।
तम्हा पोॅग्गलदव्व मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो ।। १०-२२-३२९

अह जीवो पयडी तह पोॅग्गलदव्व कुणति मिच्छत्त ।
तम्हा दोहि कद त दोण्हि वि भुजति तस्स फलं ।। १०-२३-३३०

अह ण पयडी ण जीवो पोॅग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्त ।
तम्हा पोॅग्गलदव्व मिच्छत्त त तु ण हु मिच्छा ।। १०-२४-३३१

सान्वय अर्थ – (जदि) यदि (मिच्छत्त पयडी) मोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति (अप्पाण) आत्मा को (मिच्छादिट्ठी) मिथ्या-दृष्टि (करेदि) करती है (तम्हा) इस मान्यता से (दे) तेरे मतानुसार (अचेदणा पयडी) अचेतन प्रकृति (णणु) निश्चय ही (कारगा पत्ता) मिथ्यात्व भाव की कर्त्ता हो गई ।

(अहवा) अथवा (एसो जीवो) यह जीव (पोॅग्गलदव्वस्स) पुद्गल द्रव्य के (मिच्छत्त) मिथ्यात्व को (कुणदि) करता है (तम्हा) ऐसा माना जाए तो (पोॅग्गल दव्व) पुद्गल द्रव्य (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा (ण पुण जीवो) जीव नहीं ।

(अह) अथवा (जीवो) जीव (तह) तथा (पयडी) प्रकृति—ये दोनो (पोॅग्गलदव्व) पुद्गलद्रव्य को (मिच्छत्त) मिथ्यात्वरूप (कुणति) करते हैं (तम्हा) ऐसा मानने से (दोहि कद त) दोनो के द्वारा किये हुए मिथ्यात्व (तस्स फल) उसके फल को (दोण्हि वि) वे दोनो ही (भुजति) भोगेंगे ।

(अह) अथवा (ण पयडी) न तो प्रकृति ही और (ण जीवो) न जीव ही (पॅग्गलदव्व) पुद्गलद्रव्य को (मिच्छत्त) मिथ्यात्वरूप (करेदि) करता है (तम्हा) ऐसा मानने से (पॅग्गलदव्व) पुद्गल-द्रव्य को–मिथ्यात्वभाव का प्रसंग आ जाएगा (त तु ण हु मिच्छा) क्या वह वास्तव में मिथ्या नहीं है ?

अर्थ–यदि (मोहनीय कर्म की) मिथ्यात्व प्रकृति आत्मा को मिथ्यादृष्टि करती है, इस मान्यता से तेरे मतानुसार अचेतन प्रकृति निश्चय ही मिथ्यात्व भाव की कर्त्ता हो गई, अथवा यह जीव पुद्गल द्रव्य के मिथ्यात्व को करता है, ऐसा माना जाए तो पुद्गल द्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा, जीव नही, अथवा जीव तथा प्रकृति–ये दोनो पुद्गल द्रव्य को मिथ्यात्वरूप करते है, ऐसा मानने से दोनो के द्वारा किये हुए मिथ्यात्व के फल को वे दोनो ही भोगेंगे, अथवा न तो प्रकृति और न जीव पुद्गल द्रव्य को मिथ्यात्वरूप करता है, ऐसा मानने से पुद्गल द्रव्य को (मिथ्यात्व भाव का प्रसग आ जाएगा), क्या वह वास्तव मे मिथ्या नही है ?

कर्म ही कर्त्ता है, जीव नही, यह मिथ्या है—

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहि ।
कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहि ।। १०-२५-३३२

कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहि ।
कम्मेहि य मिच्छत्त णिज्जदि य असजम चेव ।। १०-२६-३३३

कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमह चावि तिरियलोय च ।
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुह जेत्तिय किचि ।। १०-२७-३३४

जम्हा कम्म कुव्वदि कम्मं दे दि हरदि त्ति जं किंचि ।
तम्हा सव्वे जीवा अकारगा होंति आवण्णा ।। १०-२८-३३५

सान्वय अर्थ – (कम्मेहि दु) **कर्मों के द्वारा जीव** (अण्णाणी) **अज्ञानी** (किज्जदि) **किया जाता है** (तहेव) **उसी प्रकार** (कम्मेहिं) **कर्मों के द्वारा** (णाणी) **ज्ञानी होता है** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा** (सुवाविज्जदि) **सुलाया जाता है** (तहेव) **उसी प्रकार** (कम्मेहिं) **कर्मों के द्वारा** (जग्गाविज्जदि) **जगाया जाता है** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा जीव** (सुहाविज्जदि) **सुखी होता है** (तहेव) **उसी प्रकार** (कम्मेहिं) **कर्मों के द्वारा** (दुक्खाविज्जदि) **दुखी होता है** (य) **और** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा जीव** (मिच्छत्त) **मिथ्यात्व को** (णिज्जदि) **प्राप्त होता है** (असजम चेव) **और असंयम को प्राप्त होता है** (य) **और** (कम्मेहि) **कर्मों के द्वारा जीव** (उड्ढ) **ऊर्ध्वलोक** (अह चावि) **अधोलोक** (तिरियलोय च) **और तिर्यग्लोक में** (भमाडिज्जदि) **भ्रमण करता है** (च) **और** (कम्मेहि एव) **कर्मों के द्वारा ही** (जेत्तिय किचि) **जो कुछ जितना** (सुहासुह) **शुभ और अशुभ है वह** (किज्जदि) **होता है** (जम्हा) **क्योंकि** (कम्म) **कर्म** (कुव्वदि) **करता है** (कम्म) **कर्म** (देदि) **देता है** (त्ति ज किचि) **इस प्रकार**
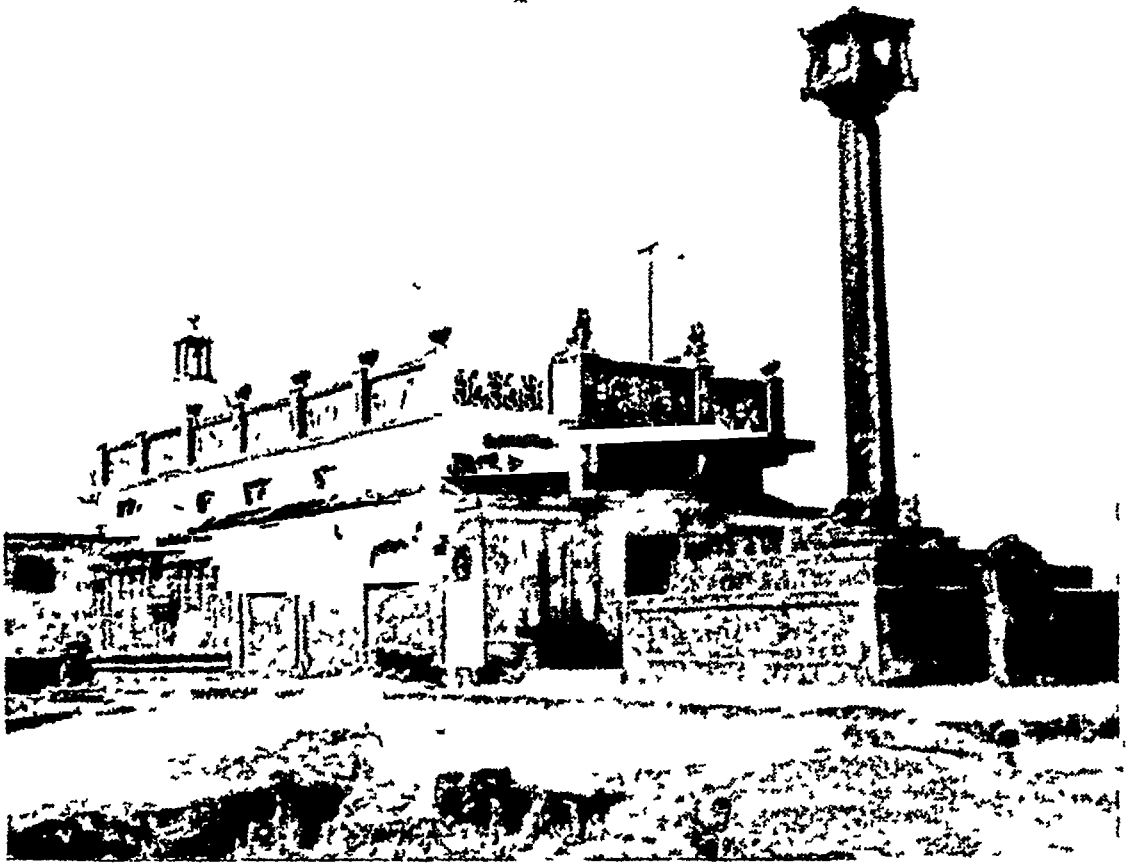
कुन्दाद्रि (कर्नाटक) स्थित पार्श्वनाथ मदिर जहाँ कुन्दकुन्दाचार्य के परम पवित्र चरण-चिह्न-युक्त की तपोगुहा, तथा सोनगढ ट्रस्ट द्वारा निर्मित कुन्दकुन्द-मण्डप है ।

प्रतिक्रमण का स्वरूप–

अप्पडिकमण दुविह अपच्चखाण तहेव विण्णेय ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ।। ८-४७-२८३

अप्पडिकमण दुविह दव्वे भावे अपच्चखाणं पि ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ।। ८-४८-२८४

जाव ण पच्चक्खाण अप्पडिकमणं च दव्वभावाणं ।
कुव्वदि आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वो ।। ८-४९-२८५

सान्वय अर्थ – (अप्पडिकमण) अप्रतिक्रमण (दुविह) दो प्रकार का है (तहेव) उसी प्रकार (अपच्चखाण) अप्रत्याख्यान-दो प्रकार का (विण्णेय) जानना चाहिये (एदेणुवदेसेण दु) इस उपदेश से (चेदा) आत्मा (अकारगो) अकारक (वण्णिदो) कहा गया है (अप्पडि-कमण) अप्रतिक्रमण (दुविह) दो प्रकार का है (दव्वे भावे) द्रव्यरूप और भावरूप (अपच्चखाण पि) अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है–द्रव्यरूप और भावरूप (एदेणुवदेसेण दु) इस उपदेश से (चेदा) आत्मा (अकारगो) अकारक (वण्णिदो) कहा गया है (जाव) जब तक (आदा) आत्मा (दव्वभावाण) द्रव्य और भाव का (पच्चक्खाण) प्रत्याख्यान (ण कुव्वदि) नहीं करता (अप्पडिकमण च) और जब तक द्रव्य और भाव का प्रतिक्रमण नहीं है (ताव दु) तब तक (सो) आत्मा (कत्ता) कर्त्ता (होदि) होता है (णादव्वो) ऐसा जानना चाहिये ।

अर्थ – (पूर्वानुभूत विषयरागादिरूप) अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है । इसी प्रकार (भावी विषयाकांक्षारूप) अप्रत्याख्यान (दो प्रकार का) जानना चाहिये । इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है । अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भावरूप से दो प्रकार का है । इस उपदेश से आत्मा अकारक कहा गया है । जब तक आत्मा द्रव्य और भाव का प्रत्याख्यान नही करता और प्रतिक्रमण नही करता, तब तक वह आत्मा (कर्मों का) कर्त्ता होता है, ऐसा जानना चाहिये ।

ज्ञानी मुनि को आहार निमित्तक बन्ध नहीं है—

आधाकम्मादीया पोंग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
किह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा दु जे णिच्च ।। ८-५०-२८६

आधाकम्म उद्देसिय च पोंग्गलमय इमं दव्व ।
किह त मम होदि कद ज णिच्चमचेदणं वुत्तं ।। ८-५१-२८७

सान्वय अर्थ — (आधाकम्मादीया) अध कर्म आदि (जो इमे) जो ये (पोंग्गलदव्वस्स) पुद्गलद्रव्य के (दोसा) दोष हैं (ते) उनको (णाणी) ज्ञानी-आत्मा (किह) किस प्रकार (कुव्वदि) कर सकता है (जे दु) जो कि (णिच्च) सदा (परदव्वगुणा) पर द्रव्य के गुण हैं (इम) यह (आधाकम्म) अध कर्म (च) और (उद्देसिय) औद्देशिक (पोंग्गलमयदव्व) पुद्गलमय द्रव्य है (ज) जो (णिच्च) सदा ही (अचेदण) अचेतन (वुत्त) कहा गया है (त) वह (मम कद) मेरा किया (किह) किस प्रकार (होदि) हो सकता है ।

अर्थ — अध कर्म आदि जो ये पुद्गलद्रव्य के दोष हैं, उनको ज्ञानी (आत्मा) किस प्रकार कर सकता है, जो कि सदा परद्रव्य के गुण हैं । यह अध कर्म और औद्देशिक पुद्गलमय द्रव्य है । वह मेरा किया किस प्रकार हो सकता है जो सदा अचेतन कहा गया है ।

अट्ठमो बंधाधियारो समत्तो

णवमो मोॅक्खाधियारो

बन्ध के ज्ञानमात्र से मोक्ष नही–

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो ।
तिव्व मदसहाव काल च वियाणदे तस्स ।। ९-१-२८८

जदि ण वि कुव्वदि छेद ण मुच्चदे तेण बधणवसो स ।
कालेण दु बहुगेण वि ण सो णरो पावदि विमोॅक्ख ।। ९-२-२८९

इय कम्मबधणाण पदेसपयडिट्ठिदीयअणुभाग ।
जाणतो वि ण मुच्चदि मुच्चदि सव्वे जदि विसुद्धो ।। ९-३-२९०

सान्वय अर्थ – (जह णाम) जैसे (वधणयम्हि) बन्धन में (चिरकालपडिवद्धो) बहुत समय से बँधा हुआ (को वि पुरिसो) कोई पुरुष (तस्स) उस बन्धन के (तिव्व) तीव्र (मदसहाव) मन्द स्वभाव को (काल च) और उसके काल को (वियाणदे) जानता है (जदि) यदि वह (छेद ण वि कुव्वदि) उस बन्धन को नहीं काटता है–तो वह (तेण) उस बन्धन से (ण मुच्चदे) नहीं छूटता (दु) और (वधणवसो स) बन्धन के वश हुआ (सो णरो) वह मनुष्य (वहुगेण वि कालेण) बहुत काल में भी (विमोक्ख ण पावदि) छुटकारा प्राप्त नहीं करता ।

(इय) इसी प्रकार जीव (कम्मबधणाण) कर्म-बन्धनो के (पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभाग) प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को (जाणतो वि) जानता हुआ भी (ण मुच्चदि) कर्मबन्ध से नहीं छूटता (जदि) यदि वह (विसुद्धो) रागादि को दूर कर शुद्ध होता है तो (सव्वे) सम्पूर्ण कर्म-बन्ध से (मुच्चदि) छूट जाता है ।

अर्थ — जैसे वन्धन मे वहुत समय से वँधा हुआ कोई पुरुष उस वन्धन के तीव्र-मन्द स्वभाव को और उसके काल को जानता है, यदि वह उस वन्धन को नही काटता है तो वह उस वन्धन मे नही छूटता और वन्धन के वश हुआ वह मनुष्य वहुत काल मे भी छुटकारा नही पाता।

इसी प्रकार जीव कर्म-बंधनो के प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को जानता हुआ भी कर्म-बन्ध मे नही छूटता। यदि वह रागादि को दूरकर शुद्ध होता है तो सम्पूर्ण कर्म-बन्ध से छूट जाता है।

बन्ध की चिन्तामात्र से मोक्ष नही–

जह् बंधे चितंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोॅक्ख ।
तह् बंधे चितंतो जीवो वि ण पावदि विमोॅक्खं ।। ९-४-२९१

मान्वय अर्थ – (जह्) जिस प्रकार (बंधणबद्धो) बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष (बंधे चितंतो) उस बन्धन की चिन्ता करता हुआ (विमोॅक्ख) मोक्ष (ण पावदि) नहीं पाता (तह्) उसी प्रकार (जीवो वि) जीव भी (बंधे चितंतो) कर्म-बन्ध का विचार करता हुआ (विमोॅक्ख) मुक्ति (ण पावदि) नही पाता ।

अर्थ – जिस प्रकार बन्धन मे पडा हुआ कोई पुरुष उस बन्धन की चिन्ता करता हुआ (चिन्ता करने मात्र से) छुटकारा नही पाता, उसी प्रकार जीव भी कर्म-बन्ध की चिन्ता करता हुआ (चिन्ता करने मात्र से) मुक्ति नही पाता ।

कर्म-बन्ध के क्षय मे मोक्ष होता है—

जह बंधे छेत्तूण य बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं ।
तह बंधे छेत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं ॥ ९-५-२९२

सान्वय अर्थ – (जह य) **जिस प्रकार** (बंधणबद्धो) **बन्धन में पड़ा हुआ कोई पुरुष** (बंधे) **बन्धनो को** (छेत्तूण) **काट कर** (दु) **अवश्य ही** (विमोक्खं पावदि) **मुक्ति प्राप्त करता है** (तह य) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (बंधे छेत्तूण) **कर्म-बन्ध को काटकर** (विमोक्खं) **मोक्ष** (संपावदि) **प्राप्त करता है।**

अर्थ – जिस प्रकार बन्धन मे पडा हुआ कोई पुरुष बन्धनो को काटकर अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है, उसी प्रकार जीव कर्म-बन्ध को काटकर मोक्ष प्राप्त करता है ।

भेद-विज्ञान मे मोक्ष होता है—

बंधाण च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहाव च ।
वंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खण कुणदि ।। ९-६-२९३

सान्वय अर्थ – (वधाण सहाव च) **बन्धो के स्वभाव को** (अप्पणो महाव च) **और आत्मा के स्वभाव को** (वियाणिदु) **जानकर** (जो) **जो पुरुष** (वधेसु) **बन्धो के प्रति** (विरज्जदि) **विरक्त होता है** (सो) **वह** (कम्मविमोक्खण कुणदि) **कर्मो से मुक्त होता है ।**

अर्थ – वन्धो के स्वभाव को और आत्मा के म्वभाव को जानकर जो पुरुप वन्धो के प्रति विरक्त होता है, वह कर्मो से मुक्त होता है ।

प्रज्ञा से भेद-विज्ञान होता है–

जीवो वधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहिं णियदेहिं ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ।। ९-७-२९४

सान्वय अर्थ – (जीवो) जीव (तहा य) तथा (वधो) वन्ध (णियदेहिं सलक्खणेहिं) अपने-अपने निश्चित लक्षणो के द्वारा (छिज्जति) पृथक् किये जाते है (पण्णाछेदणएण दु) प्रज्ञारूपी छुरी के द्वारा (छिण्णा) पृथक् किये हुए ये (णाणत्तमावण्णा) नानारूप हो जाते है–पृथक् हो जाते है ।

अर्थ – जीव तथा वन्ध ये दोनो अपने-अपने निश्चित लक्षणो के द्वारा पृथक् किये जाते है । प्रज्ञा रूपी छुरी के द्वारा छेदे हुए (पृथक् किये हुए) ये नाना-रूप हो जाते हैं (पृथक् हो जाते है) ।

भेद-विज्ञान होने पर जीव का कर्त्तव्य—

जीवो बंधो य तहा छिज्जति सलक्खणेहि णियदेहिं ।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ।। ९-८-२९५

सान्वय अर्थ — (जीवो) जीव (तहा य) तथा (बंधो) बन्ध (णियदेहिं सलक्खणेहि) अपने निश्चित लक्षणो के द्वारा (छिज्जति) पृथक् किये जाते हैं—वहाँ (बंधो) बन्ध को तो (छेदेदव्वो) आत्मा से पृथक् कर देना चाहिये (य) और (सुद्धो अप्पा) शुद्ध आत्मा को (घेत्तव्वो) ग्रहण करना चाहिये ।

अर्थ — जीव तथा बन्ध अपने-अपने निश्चित लक्षणो के द्वारा पृथक् किये जाते हैं । वहाँ बन्ध को तो (आत्मा से) पृथक् कर देना चाहिये और शुद्ध आत्मा को ग्रहण करना चाहिये ।

प्रज्ञा के द्वारा ही आत्मा को ग्रहण करना चाहिये—

किह सो घेप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घेप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो ।। ९-९-२९६

सान्वय अर्थ — **शिष्य पूछता है कि** (सो अप्पा) **वह शुद्ध आत्मा** (किह) **कैसे** (घेप्पदि) **ग्रहण किया जा सकता है—आचार्य उत्तर देते हैं**—(सो दु अप्पा) **वह शुद्ध आत्मा** (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घेप्पदे) **ग्रहण किया जाता है** (जह) **जैसे-पहले** (पण्णाइ) **प्रज्ञा के द्वारा** (विहत्तो) **भिन्न किया था** (तह) **उसी प्रकार** (पण्णाएव) **प्रज्ञा के द्वारा ही** (घेत्तव्वो) **ग्रहण करना चाहिये ।**

अर्थ — (शिष्य गुरु से पूछता है) वह शुद्ध आत्मा कैसे ग्रहण किया जा सकता है ? (आचार्य उत्तर देते हैं) वह शुद्ध आत्मा प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण किया जाता है । जैसे (पहले) प्रज्ञा के द्वारा विभक्त किया था, उसी प्रकार प्रज्ञा के द्वारा ही ग्रहण करना चाहिये ।

मैं चिदात्मा हूँ—

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अह तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।। ९-१०-२९७

सान्वय अर्थ — (पण्णाए) प्रज्ञा के द्वारा (घेत्तव्वो) इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि (जो चेदा) जो चिदात्मा है (णिच्छयदो) निश्चय से (सो तु) वह (अह) मैं हूँ (अवसेसा) शेष (जे भावा) जो भाव है (ते) वे (मज्झ) मुझसे (परे) पर है (त्ति णादव्वा) यह जानना चाहिये ।

अर्थ — प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि जो चिदात्मा है, निश्चय से वह मैं हूँ, शेष जो भाव हैं, वे मुझसे पर हैं, यह जानना चाहिये ।

मैं दृष्टा मात्र हूँ–

पण्णाए घें‌त्तव्वो जो दट्ठा सो अह तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।। ९-११-२९८

सान्वय अर्थ – (पण्णाए) **प्रज्ञा के द्वारा** (घें‌त्तव्वो) **इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि** (जो दट्ठा) **जो दृष्टा–देखने वाला है** (णिच्छयदो) **निश्चय से** (सो तु) **वह** (अहं) **मैं हूँ** (अवसेसा) **शेष** (जे भावा) **जो भाव है,** (ते) **वे सब** (मज्झ) **मुझसे** (परे) **पर है** (त्ति णादव्वा) **यह जानना चाहिये ।**

अर्थ – प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि जो देखने वाला दृष्टा है, निश्चय से वह मैं हूँ, शेष जो भाव है, वे मुझसे पर हैं, यह जानना चाहिये ।

मैं ज्ञातामात्र हूँ–

पण्णाए घेत्तव्वो जो णादा सो अह तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ।। ९-१२-२९९

सान्वय अर्थ – (पण्णाए) प्रज्ञा के द्वारा (घेत्तव्वो) इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि (जो णादा) जो ज्ञाता–जानने वाला है (णिच्छयदो) निश्चय से (सो तु) वह (अह) मैं हूँ (अवसेसा) शेष (जे भावा) जो भाव हैं (ते) वे (मज्झ) मुझसे (परे) पर हैं (त्ति णादव्वा) यह जानना चाहिये ।

अर्थ – प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि जो जानने वाला-ज्ञाता है, निश्चय से वह मैं हूँ शेष जो भाव हैं, वे मुझसे पर हैं, यह जानना चाहिये ।

चिन्मात्र भाव ही अपने हैं—

को णाम भणेंज्ज बुहो णादु सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिण ति य वयण जाणतो अप्पय सुद्ध ।। ९-१३-३००

सान्वय अर्थ — (अप्पय) **आत्मा को** (सुद्ध) **शुद्ध** (जाणतो) **जानता हुआ** (सव्वे भावे) **शेष सब भावो को** (पराइए) **पर** (णादु) **जानकर** (को णाम वुहो) **कौन वुद्धिमान** (मज्झमिण) **ये मेरे हैं** (ति य वयण) **ऐसे वचन** (भणेंज्ज) **कहेगा ।**

अर्थ — आत्मा को शुद्ध जानता हुआ, शेप सव भावो को पर जानकर कौन वुद्धिमान 'ये भाव मेरे हैं' ऐसे वचन कहेगा ।

सापराध और निरपराध आत्मा–

थेयादी अवराहे कुव्वदि जो सो ससकिदो होदि ।
मा बज्झे ह केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरंतो ।। ९-१४-३०१

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्सको दु जणवदे भमदि ।
ण वि तस्स वज्झिदु ज चिता उप्पज्जदि कया वि ।। ९-१५-३०२

एव हि सावराहो बज्झामि अह तु सकिदो चेदा ।
जो पुण णिरावराहो णिस्सको ह ण बज्झामि ।। ९-१६-३०३

सान्वय अर्थ – (जो) जो पुरुष (थेयादी अवराहे) चोरी आदि अपराधो को (कुव्वदि) करता है (सो) वह पुरुष (ससकिदो) सशकित (होदि) रहता है कि (जणम्हि) मनुष्यो के बीच (वियरतो) घूमते हुए (चोरो त्ति) चोर है ऐसा जानकर (केण वि) किसी के द्वारा (ह मा वज्झे) मै बॉध न लिया जाऊँ (जो) जो पुरुष (अवराहे) अपराध (ण कुणदि) नहीं करता (सो दु) वह तो (जणवद) देश में (णिस्सको) निःशंक (भमदि) घूमता है (जे) क्योकि (तस्स) उसके मन में (वज्झिदु चिता) बँधने की चिन्ता (कया वि) कभी (ण वि उप्पज्जदि) नहीं उत्पन्न होती (एव हि) इसी प्रकार (सावराहो चेदा) अपराधी आत्मा (सकिदो) शकित रहता है कि (अह तु वज्झामि) मै–ज्ञानावरणादि कर्मो से बन्ध को प्राप्त होऊँगा (जो पुण णिरावराहो) यदि निरपराध हो तो (णिस्सको) नि शक रहता है कि (अह ण वज्झामि) मै नही बँधूंगा ।

अर्थ – जो पुरुप चोरी आदि अपराधो को करता है, वह पुरुप सशकित रहता है कि मनुष्यो के बीच घूमते हुए 'चोर है' ऐसा जानकर किसी के द्वारा मैं बाँध न लिया जाऊँ । जो पुरुप अपराध नही करता, वह तो देश मे नि शक घूमता है क्योकि उसके मन मे बँधने की चिन्ता कभी उत्पन्न नही होती ।

इसी प्रकार अपराधी आत्मा शकित रहता है कि मैं (ज्ञानावरणादि कर्मों से) बन्ध को प्राप्त होऊँगा । यदि वह निरपराध हो तो नि शक रहता है कि मैं नही बँधूंगा ।

निरपराध आत्मा नि शक होता है—

ससिद्धिराधसिद्धं साधिदमाराधिद च एयट्ठ ।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो ।। ७-१७-३०४

जो पुण णिरावराधो चेदा णिस्सकिदो दु सो होदि ।
आराहणाइ णिच्च वट्टदि अहमिदि वियाणतो ।। ६-१८-३०५

सान्वय अर्थ — (ससिद्धिराधसिद्ध) **ससिद्धि, राध, सिद्ध** (साधिदमाराधिद च) **साधित और आराधित** (एयट्ठ) **ये सब एकार्थक है** (जो खलु चेदा) **जो आत्मा** (अवगदराधो) **राधरहित है—निज शुद्धात्मा की आराधना से रहित है** (सो) **वह** (अवराधो) **अपराध** (होदि) **होता है** (पुण) **और** (जो चेदा) **जो आत्मा** (निरावराधो) **निरपराध होता है** (सो दु) **वह** (णिस्सकिदो) **नि शक** (होदि) **होता है** (अहमिदि) **मै उपयोगस्वरूप एक शुद्ध आत्मा हूँ, इस प्रकार** (वियाणतो) **जानता हुआ** (आराहणाइ) **शुद्धात्मसिद्धि रूप आराधना से** (णिच्च वट्टदि) **सदा ही प्रवृत्त रहता है ।**

अर्थ — ससिद्धि, राध, सिद्ध, साधित और आराधित ये सब एकार्थक है । जो आत्मा राधरहित है (निज शुद्धात्मा की आराधना से रहित है, वह आत्मा अपराध होता है, और जो आत्मा निरपराध होता है, वह नि शक होता है । ऐसा आत्मा 'मैं (उपयोग-स्वरूप एक शुद्ध आत्मा) हूँ' इस प्रकार जानता हुआ (शुद्धात्मसिद्धिरूप) आराधना मे सदा ही वर्तता है ।

जो कुछ है उसे कर्म ही (हरंति) हरता है (तम्हा) इसलिए (सव्वे जीवा) सभी जीव (अकारगा आवण्णा होंति) अकर्त्ता सिद्ध होते हैं।

अर्थ – (पूर्व पक्ष) "कर्मों के द्वारा जीव अज्ञानी किया जाता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा ज्ञानी होता है। कर्मों के द्वारा जीव सुलाया जाता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा जगाया जाता है। कर्मों के द्वारा जीव सुखी होता है, उसी प्रकार कर्मों के द्वारा दुखी होता है। कर्मों के द्वारा जीव मिथ्यात्व और असयम को प्राप्त होता है, और कर्मों के द्वारा जीव ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक में भ्रमण करता है। कर्मों के द्वारा ही जो कुछ जितना शुभ और अशुभ है वह होता है, क्योंकि कर्म करता है, कर्म देता है, इस प्रकार जो कुछ है, उसे कर्म ही हरता है, इसलिए सभी जीव अकर्त्ता सिद्ध होते है।"

आत्मा को अकर्त्ता मानने का दुष्परिणाम—

पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि ।
एसा आयरियपरपरागदा एरिसी दु सुदी ।। १०-२९-३३६

तम्हा ण को वि जीवो अवंभयारी दु तुम्हमुवदेसे ।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्म अहिलसदि जं भणिद ।। १०-३०-३३७

जम्हा घादेदि पर परेण घादिज्जदे य सा पयडी ।
एदेणत्थेण दु किर भण्णदि परघादणामे त्ति ।। १०-३१-३३८

तम्हा ण को वि जीवो वघादगो अत्थि तुम्ह उवदेसे ।
जम्हा कम्म चेव हि कम्म घादेदि जं भणिदं ।। १०-३२-३३९

सान्वय अर्थ – (पुरिसित्थियाहिलासी) पुरुष वेदकर्म स्त्री की अभिलाषा करता है (च) और (इत्थीकम्मं) स्त्रीवेदकर्म (पुरिस-महिलसदि) पुरुष की अभिलाषा करता है (एसा आयरियपरपरागदा) यह आचार्य परम्परा से आई हुई (एरिसी दु सुदी) ऐसी श्रुति है (तम्हा) इस मान्यतानुसार (तुम्हमुवदेसे दु) तुम्हारे उपदेश—मत में (रा वि जीवो) कोई भी जीव (अवभयारी) अब्रह्मचारी (ण) नहीं है (जम्हा) क्योंकि जो (पर घादेदि) दूसरे को मारता है (य) और (परेण घादिज्जदे) दूसरे के द्वारा मारा जाता है (सा पयडी) वह भी कर्म है (एदेणत्थेण दु किर) इसी अर्थ में (परघादणामे त्ति भण्णदि) परघात नामकर्म कहा जाता है (तम्हा) इसलिए (तुम्ह उवदेसे) तुम्हारे उपदेश—मत में (को वि जीवो) कोई जीव (वघादगो) उपघात करने वाला (ण अत्थि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कम्म चेव हि) कर्म ही (कम्म घादेदि) कर्म को मारता है (ज भणिद) यह कहा है।

अर्थ — (पूर्वोक्त मतवाले यह भी मानते हैं कि) — "पुरुष वेदकर्म स्त्री की अभिलाषा करता है, आचार्य-परम्परा से आई हुई ऐसी श्रुति है, इसलिए तुम्हारे मत में कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं है।

क्योंकि जो दूसरे को मारता है और दूसरे के द्वारा मारा जाता है, वह भी कर्म है। इसी अर्थ में परघात नामकर्म कहा जाता है, इसलिए तुम्हारे मत में कोई जीव उपघात करने वाला नहीं है, क्योंकि कर्म ही कर्म को मारता है, यह कहा है।"

आत्मा को अकर्त्ता मानने वाले श्रमण नही है–

एव संखुवदेसं जे दु परूविंति एरिस समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे ॥ १०-३३-३४०

सान्वय अर्थ – (एव दु) **इस प्रकार** (एरिस सखुवदेस) **ऐसा सांख्यमत का उपदेश** (जे समणा) **जो श्रमण-श्रमणाभास** (परूविंति) **करते है** (तेसिं) **उनके मत में** (पयडी) **प्रकृति ही** (कुव्वदि) **करती है** (य)[**और** (सव्वे अप्पा) **सब आत्मा** (अकारगा) **अकारक है–ऐसा सिद्ध होता है ।**

अर्थ – (आचार्यदेव कहते है कि)–इस प्रकार साख्यमत का ऐसा उपदेश जो श्रमण (श्रमणाभास) करते है, उनके मत मे प्रकृति ही करती है और सब आत्मा अकारक है (ऐसा सिद्ध होता है) ।

अपेक्षा-भेद से आत्मा कर्त्ता और अकर्त्ता है—

अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि ।
एसो मिच्छसहावो तुम्ह एवं भणंतस्स ।। १०-३४-३४१

अप्पा णिच्चासखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि ।
ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो व कादु जे ।। १०-३५-३४२

जीवस्स जीवरूव वित्थरदो जाण लोगमित्त हि ।
तत्तो सो किं हीणो अहियो य कद भणसि दव्व ।। १०-३६-३४३

अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थि दे दि मद ।
तम्हा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि ।। १०-३७-३४४

सान्वय अर्थ – (अहवा) अथवा (मण्णसि) ऐसा मानो कि (मज्झ अप्पा) मेरा आत्मा (अप्पणो अप्पाण) अपने द्रव्यरूप आत्मा को (कुणदि) करता है (एव भणतस्स तुम्ह) ऐसा कहने वाले तेरा (एसो मिच्छसहावो) यह मिथ्यात्व भाव है—क्योंकि (समयम्हि दु) परमागम में (अप्पा) आत्मा को (णिच्चासखेज्जपदेसो) नित्य और असख्यात प्रदेशी (देसिदो) कहा गया है (जे मो) वह आत्मा (तत्तो हीणो व अहियो) उससे हीन अथवा अधिक (कादु ण वि सक्कदि) नहीं किया जा सकता (वित्थरदो) और विस्तार की अपेक्षा (जीवस्स जीवरूव) जीव का जीवरूप (हि) निश्चय से (लोगमित्त) लोकमात्र (जाण) जानो (तत्तो) उससे (मो) आत्मा (किं हीणो अहियो य) क्या हीन अथवा अधिक होता है (भणसि) जो तू कहता है कि आत्मा ने (दव्व कद) द्रव्यरूप आत्मा को किया (अह) अथवा (जाणगो दु भावो) ज्ञायक भाव तो (णाणसहावेण) ज्ञानस्वभाव से (अत्थि) स्थित है (दे दि मद) अगर तेरा ऐसा मत है (तम्हा) तो इससे भी (अप्पा सय) आत्मा स्वय (अप्पणो अप्पयं तु) अपने आत्मा को (ण कुणदि) नहीं करता—यह सिद्ध होता है ।

अर्थ – अथवा (कर्त्तृत्व का पक्ष सिद्ध करने के लिए) ऐसा मानो कि मेरा आत्मा अपने द्रव्यरूप आत्मा को करता है। ऐसा कहने वाले तेरा यह मिथ्यात्व भाव है, क्योकि परमागम मे आत्मा को नित्य और असख्यात प्रदेशी कहा गया है। आत्मा उससे हीन या अधिक नही किया जा सकता। विस्तार की अपेक्षा जीव का जीवरूप निश्चय से लोकमात्र जानो। आत्मा उससे क्या हीन अथवा अधिक होता है जो तू कहता है कि आत्मा ने द्रव्यरूप आत्मा को किया, अथवा अगर तेरा ऐसा मत है कि ज्ञायक भाव तो ज्ञानस्वभाव से स्थित है तो इससे भी आत्मा स्वय अपने आत्मा को नही करता (यह सिद्ध होता है)।

वस्तु नित्यानित्यात्मक है–

केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहि चि दु जीवो ।
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयतो ।। १०-३८-३४५

केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो ।
जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयतो ।। १०-३९-३४६

जो चेव कुणदि सो चेव[1] वेदगो जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ।। १०-४०-३४७

अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धतो
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ।। १०-४१-३४८

सान्वय अर्थ – (जम्हा) क्योकि (जीवो) जीव (केहिचि दु पज्जयेहिं) कितनी ही पर्यायो से (विणस्सदे) नष्ट होता है (केहिचि दु) और कितनी ही पर्यायो से (णेव) नष्ट नहीं होता (तम्हा) इसलिए (सो वा कुव्वदि) जो भोगता है, वही करता है (व अण्णो) या अन्य करता है–ऐसा (णेयतो) एकान्त नहीं है (जम्हा) क्योकि (जीवो) जीव (केहिचि दु पज्जयेहिं) कितनी ही पर्यायो से (विणस्सदे) नष्ट होता है (केहिचि दु) कितनी ही पर्यायो से (णेव) नष्ट नहीं होता (तम्हा) इसलिए (सो वा वेददि) जो करता है, वही भोगता है (व अण्णो) अथवा अन्य भोगता है–ऐसा (णेयतो) एकान्त नहीं है (जो चेव कुणदि) जो जीव करता है (सो चेव वेदगो) वही भोगता है (जस्स) जिसका (एस सिद्धतो) यह सिद्धान्त है (सो जीवो) वह जीव (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (अणारिहदो) आर्हत मत का न मानने वाला (णादव्वो) जानना चाहिये (अण्णो करेदि) कोई अन्य करता है (अण्णो परिभुजदि) कोई अन्य भोगता है (जस्स)

1. 'जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदए' इति पाठान्तरम् ।

जिसका (एस सिद्धतो) ऐसा सिद्धान्त है (सो जीवो) वह जीव (मिच्छादिट्ठी) मिथ्यादृष्टि (अणारिहदो) आर्हत मत का न मानने वाला (णादव्वो) जानना चाहिये ।

अर्थ – क्योकि जीव कितनी ही पर्यायो से नष्ट होता है और कितनी ही पर्यायो से नष्ट नही होता इसलिए (जो भोगता है), वही करता है या अन्य करता है, ऐसा एकान्त नही है, क्योकि जीव कितनी ही पर्यायो से नष्ट होता है और कितनी ही पर्यायो से नष्ट नही होता, इसलिए (जो करता है), वही भोगता है अथवा अन्य भोगता है, ऐसा एकान्त नही है ।

जो जीव करता है, वही भोगता है, जिसका यह सिद्धान्त है, वह जीव मिथ्यादृष्टि, आर्हत मत का न मानने वाला जानना चाहिये । कोई अन्य करता है , कोई अन्य भोगता है, जिसका ऐसा सिद्धान्त है, वह जीव मिथ्यादृष्टि, आर्हत मत का न मानने वाला जानना चाहिए ।

जीव परिणमन करता हुआ भी अन्य द्रव्यरूप नही होता—

जह सिप्पिओ दु कम्म कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो वि य कम्म कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ।। १०-४२-३४९

जह सिप्पिउ करणेहि कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो करणेहि कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ।। १०-४३-३५०

जह सिप्पिउ करणाणि य गिण्हदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो करणाणि य गिण्हदि ण य तम्मओ होदि ।। १०-४४-३५१

जह सिप्पिउ कम्मफल भुजदि ण य सो दु तम्मओ होदि ।
तह जीवो कम्मफल भंजदि ण य तम्मओ होदि ।। १०-४५-३५२

सान्वय अर्थ – (जह) जैसे (सिप्पिओ दु) शिल्पी-स्वर्णकार आदि (कम्म) कुण्डल आदि कर्म (कुव्वदि) करता है (सो दु) परन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नहीं होता (तह) उसी प्रकार (जीवो वि य) जीव भी (कम्म) ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को (कुव्वदि) करता है–किन्तु (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नहीं होता (जह) जैसे (सिप्पिउ) शिल्पी-स्वर्णकार आदि (करणेहि) हथौड़ा आदि उपकरणो से (कुव्वदि) कुण्डल आदि बनाता है (सो दु) किन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नहीं होता (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (करणेहि) मन-वचन-कायरूप करणो के द्वारा (कुव्वदि) ज्ञानावरणादि कर्म करता है (तम्मओ) किन्तु तन्मय (ण य होदि) नही होता (जह) जिस प्रकार (सिप्पिउ) स्वर्णकार आदि शिल्पी (करणाणि य) उपकरणो को (गिण्हदि) ग्रहण करता है (सो दु) किन्तु वह (तम्मओ) तन्मय (ण य होदि) नहीं होता (तह) उसी प्रकार (जीवो) जीव (करणाणि य) मन-वचन- कायरूप करणो को (गिण्हदि) ग्रहण करता है (तम्मओ) किन्तु तन्मय (ण य होदि) नहीं होता (जह) जैसे (सिप्पिउ) स्वर्ण-

कार आदि शिल्पी (कम्मफल) **कुण्डलादि कर्मों के फल को** (भुजदि) **भोगता है** (सो दु) **किन्तु वह** (तम्मओ) **तन्मय** (ण य होदि) **नहीं होता** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (कम्मफल) **कर्म के सुख-दुख.रूप फल को** (भुजदि) **भोगता है** (तम्मओ) **किन्तु उनसे तन्मय** (ण य होदि) **नही होता।**

अर्थ – जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी कुण्डल आदि कर्म करता है, परन्तु वह उनसे तन्मय नही होता। उसी प्रकार जीव भी ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को करता है, किंतु वह उनसे तन्मय नही होता।

जैसे शिल्पी (स्वर्णकार आदि) हथौडा आदि उपकरणो से कुण्डल आदि बनाता है, किंतु वह उनसे तन्मय नही होता। उसी प्रकार जीव भी मन-वचन-कायरूप करणो के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म करता है, किंतु वह उनसे तन्मय नही होता।

जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी उपकरणो को ग्रहण करता है, किन्तु वह उनसे तन्मय नही होता, उसी प्रकार जीव भी मन-वचन-कायरूप करणो को ग्रहण करता है, किंतु वह उनसे तन्मय नही होता।

जैसे स्वर्णकार आदि शिल्पी कुण्डलादि कर्मों के फल को भोगता है, किंतु वह उस फल से तन्मय नही होता, उसी प्रकार जीव भी कर्म के सुख-दु खरूप फल को भोगता है, किन्तु वह उस फल से तन्मय नही होता।

सूचनिका गाथा—

एव ववहारस्स दु वत्तव्व दसण समासेण ।
सुणु णिच्छयस्स वयण परिणामकद तु ज होदि ।। १०-३६-३५३

सान्वय अर्थ—(एव दु) इस प्रकार तो (ववहारस्स दसण) व्यवहार का मत (समासेण) सक्षेप में (वत्तव्व) कहने योग्य है—आगे (णिच्छयस्स) निश्चयनय का (वयण) वचन (सुणु) सुनो (ज तु) जो (परिणामकद) अपने परिणामो के द्वारा किया हुआ (होदि) होता है।

अर्थ—इस प्रकार तो व्यवहार नय का मत सक्षेप मे कहने योग्य है। आगे निश्चयनय का वचन सुनो, जो अपने परिणामो के द्वारा किया हुआ होता है।

जीव अपने भावकर्मों मे तन्मय होने मे दुखी होता है–

जह सिप्पिओ दु चेट्ठ कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो ।
तह जीवो वि य कम्म कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो ।। १०-४७-३५४

जह चेट्ठं कुव्वतो दु सिप्पिओ णिच्चदुक्खिदो होदि ।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ।। १०-४८-३५५

सान्वय अर्थ – (जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (चेट्ठ) **अपने परिणामरूप चेष्टा** (कुव्वदि) **करता है** (तहा य) **तथा** (सो) **वह** (अणण्णो हवदि) **उस चेष्टा से तन्मय हो जाता है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो वि य) **जीव भी** (कम्म) **रागादि भाव कर्म** (कुव्वदि) **करता है** (य) **और** (सो) **वह** (अणण्णो) **उस भावकर्म से अनन्य-तन्मय** (हवदि) **हो जाता है** (जह) **जैसे** (सिप्पिओ दु) **स्वर्णकार आदि शिल्पी** (चेट्ठ कुव्वतो) **चेष्टा करता हुआ** (णिच्चदुक्खिदो) **नित्य दुखी** (होदि) **होता है** (तत्तो) **और उस दुःख से** (अणण्णो) **अनन्य** (सिया) **होता है** (तह) **उसी प्रकार** (जीवो) **जीव** (चेट्ठतो) **हर्ष-विषादरूप चेष्टा करता हुआ** (दुही) **दुखी होता है ।**

अर्थ – जैसे स्वर्णकारादि शिल्पी (कुण्डलादि ऐसे बनाऊँगा, इस प्रकार मन मे) चेष्टा करता है तथा उस चेष्टा से वह तन्मय हो जाता है। उसी प्रकार जीव भी रागादि भावकर्म करता है और वह उस भावकर्म से तन्मय हो जाता है। जैसे स्वर्णकारादि शिल्पी चेष्टा करता हुआ नित्य दुखी होता है और उस दु ख मे अनन्य (तन्मय) होता है, उसी प्रकार जीव हर्ष-विषाद रूप चेष्टा करता हुआ दुखी होता है (और उस दु ख मे वह अनन्य है)।

जीव के ज्ञान-दर्शन-चारित्र पर्यायो का निश्चय स्वरूप–

जह् सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि ।
तह् जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु ।। १०-४९-३५६

जह् सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि ।
तह् पस्सगो दु ण परस्स पस्सगो पस्सगो सो दु ।। १०-५०-३५७

जह् सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि ।
तह् संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु ।। १०-५१-३५८

जह् सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि ।
तह् दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसण तं तु ।। १०-५२-३५९

सान्वय अर्थ – (जह्) जैसे (सेडिया दु) सफेदी (परस्स) पर की–दीवाल आदि की (ण) नहीं है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह्) उसी प्रकार (जाणगो दु) ज्ञायक-आत्मा (परस्स ण) पर का नहीं है (जाणगो) ज्ञायक (सो दु) वह तो (जाणगो) ज्ञायक ही है (जह्) जैसे (सेडिया दु) सफेदी (परस्स ण) पर की–दीवाल आदि की नहीं है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह्) उसी प्रकार (पस्सगो दु) देखने वाला-आत्मा (परस्स ण) पर का नहीं है (पस्सगो) दृष्टा (सो दु पस्सगो) वह तो दृष्टा ही है (जह्) जैसे (सेडिया) सफेदी (दु) तो (परस्स) पर की–दीवाल आदि की नहीं है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह्) उसी प्रकार (संजदो दु) संयत-आत्मा (परस्स ण) पर का नही है (संजदो) संयत (सो दु संजदो) वह तो संयत ही है (जह्) जैसे (सेडिया दु) सफेदी (परस्स ण) पर–दीवाल आदि की नहीं है (सेडिया) सफेदी (सा य सेडिया होदि) वह तो सफेदी ही है (तह्)

उसी प्रकार (दसण दु) सम्यग्दर्शन (परस्स ण) पर का नहीं है (दसण) सम्यग्दर्शन (त तु दसण) वह तो सम्यग्दर्शन ही है।

अर्थ—जैसी मफेदी खडिया पर की (दीवाल आदि रूप) नही है, मफेदी वह तो सफेदी ही है (वह अपने म्वरूप मे ही रहती है), उसी प्रकार ज्ञायक (आत्मा) पर का (ज्ञेयरूप) नही है। ज्ञायक वह तो ज्ञायक ही है (पर को जानता हुआ भी अपने म्वरूप मे रहता है)। जैमे सफेदी-खडिया पर की नही है, मफेदी वह तो सफेदी ही है, उमी प्रकार दर्शक (आत्मा) पर का नही है, दर्शक (दृष्टा) वह तो दर्शक ही है। जैमे सफेदी-खडिया पर की नही है। सफेदी वह तो मफेदी ही है, उसी प्रकार मयत (आत्मा) पर का (परिग्रहादि रूप) नही है। मयत वह तो मयत ही है। जैमे मफेदी-खडिया पर की (दीवाल आदि रूप) नही है। सफेदी वह तो सफेदी ही है। उसी प्रकार दर्शन (श्रद्धान) पर का नही है। दर्शन वह तो दर्शन ही है।

चूलिका गाथा—

एवं तु णिच्छयणयस्स भासिद णाणदसणचरित्ते ।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ।। १०-५३-३६०

सान्वय अर्थ — (एव तु) इस प्रकार (णाणदसणचरित्ते) ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में (णिच्छयणयस्स) निश्चय नय का (भासिद) कथन हुआ (य) और-अव (से) उसके विषय में (समासेण) सक्षेप में (ववहारणयस्स वत्तव्व) व्यवहार नय का कथन (सुणु) सुनो ।

अर्थ— इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय मे निश्चय नय का कथन हुआ, और अव उसके विषय मे सक्षेप मे व्यवहार नय का कथन सुनो ।

सम्यग्दृष्टि स्वभाव से देखता, जानता और त्यागता है—

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणदि णादा वि सएण भावेण ।। १०-५४-३६१

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्व पस्सदि जीवो वि सएण भावेण ।। १०-५५-३६२

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्व विजहदि णादा वि सएण भावेण ।। १०-५६-६६३

जह परदव्व सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्व सद्दहदि सम्मादिट्ठी सहावेण ।। १०-५७-३६४

सान्वय अर्थ – (जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खड़िया (अप्पणो (सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है (तह) उसी प्रकार (णादा वि) ज्ञाता आत्मा भी (सएण भावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य को (जाणदि) जानता है (जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खड़िया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है (तह) उसी प्रकार (जीवो वि) जीव भी (सएण भावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य को (पस्सदि) देखता है (जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खड़िया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य–दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है (तह) उसी प्रकार (णादा वि) ज्ञाता आत्मा भी (सएण भावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य को (विजहदि) त्यागता है (जह) जैसे (सेडिया) सफेदी-खड़िया (अप्पणो सहावेण हु) अपने स्वभाव से ही (परदव्व) परद्रव्य-दीवाल आदि को (सेडदि) सफेद करती है (तह) उसी प्रकार (सम्मादिट्ठी)

सम्यग्दृष्टि (सहावेण) अपने स्वभाव से (परदव्व) परद्रव्य का (सद्दहदि) श्रद्धान करता है ।

अर्थ – जैसे सफेदी–खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को जानता है ।

जैसे सफेदी–खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार जीव भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को देखता है ।

जैसे सफेदी–खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा भी अपने स्वभाव से परद्रव्य को त्यागता है ।

जैसे सफेदी–खड़िया अपने स्वभाव से ही परद्रव्य (दीवाल आदि) को सफेद करती है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने स्वभाव से परद्रव्य का श्रद्धान करता है ।

जीव की अन्य पर्यायो का व्यवहार स्वरूप–

एव ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिदो अण्णेसु वि पज्जयसु एमेव णादव्वो ।। १०-५८-३६५

मान्वय अर्थ – (एव दु) इस प्रकार (णाणदंसणचरित्ते) ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय में (ववहारस्स) व्यवहार नय का (विणिच्छओ) निर्णय (भणिदो) कहा है (अण्णेसु पज्जयेसु वि) अन्य पर्यायो में भी (एमेव णादव्वो) इसी प्रकार जानना चाहिये ।

अर्थ – इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विषय मे व्यवहार नय का निर्णय कहा है । अन्य पर्यायो मे भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।

आत्मा के गुण परद्रव्य में नहीं हैं–

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥ १०-५९-३६६

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे ।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तम्मि कम्मम्मि ॥ १०-६०-३६७

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काये ।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥ १०-६१-३६८

सान्वय अर्थ – (दंसणणाणचरित्तं) दर्शन, ज्ञान और चारित्र (अचेदणे विसए दु) अचेतन विषय में (किंचि वि) किंचिन्मात्र भी (णत्थि) नहीं है (तम्हा) इसलिए (चेदयिदा) आत्मा (तेसु विसएसु) उन विषयों में (किं घादयदे) क्या घात करेगा ?

(दंसणणाणचरित्तं) दर्शन, ज्ञान और चारित्र (अचेदणे कम्मे दु) अचेतन कर्म में (किंचि वि) किंचिन्मात्र भी (णत्थि) नहीं है (तम्हा) इसलिए (चेदयिदा) आत्मा (तम्मि कम्मम्मि) उस कर्म में (किं घादयद) क्या घात करेगा ?

(दंसणणाणचरित्तं) दर्शन, ज्ञान और चारित्र (अचेदणे काये दु) अचेतन काय में (किंचि वि) किंचिन्मात्र भी (णत्थि) नहीं है (तम्हा) इसलिए (चेदयिदा) आत्मा (तेसु कायेसु) उन कायों में (किं घादयदे) क्या घात करेगा ?

अर्थ – दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन विषय में किंचिन्मात्र भी नहीं है, इसलिए आत्मा उन विषयों में क्या घात करेगा ?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन कर्म में किंचिन्मात्र भी नहीं है, इसलिए आत्मा उस कर्म में क्या घात करेगा ?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र अचेतन काय में किंचिन्मात्र भी नहीं है, इसलिए आत्मा उन कायों में क्या घात करेगा ?

ज्ञानादि का घात होने पर पुद्गल का घात नही होता—

णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स ।
ण वि तम्हि को वि पोंग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो ॥ १०-६२-३६९

सान्वय अर्थ – (णाणस्स) ज्ञान का (दसणस्स) दर्शन का (तहा य) और (चरित्तस्स) चारित्र का (घादो) घात (भणिदो) कहा है (तम्हि पोंग्गलदव्वे) उस पुद्गल द्रव्य में (दु) तो (को वि घादो) कोई घात (ण वि णिद्दिट्ठो) नही कहा ।

अर्थ – ज्ञान, दर्शन और चारित्र का घात बताया है, (किन्तु) उस पुद्गल द्रव्य मे कोई घात नही कहा ।

सम्यग्दृष्टि को विषयो मे राग नही है–

जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु ।
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ।। १०-६३-३७०

सान्वय अर्थ – (जीवस्स) **जीव के** (जे केई) **जो कोई** (गुणा) **गुण है** (ते खलु) **वे वास्तव में** (परेसु दव्वेसु) **पर द्रव्यो मे** (णत्थि) **नहीं है** (तम्हा) **इसलिए** (सम्मादिट्ठिस्स) **सम्यग्दृष्टि को** (विसएसु) **विषयो में** (रागो दु) **राग** (णत्थि) **नहीं है ।**

अर्थ – जीव के जो कोई गुण है, वे वास्तव मे परद्रव्यो मे नही है, इसलिए सम्यग्दृष्टि को विषयो मे राग नही है ।

जीव के रागादि परिणाम परद्रव्य मे नही है–

रागो दोसो मोहो जीवस्स दु ते अणण्णपरिणामा ।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी ।। १०-६४-३७१

सान्वय अर्थ – (रागो) **राग** (दोसो) **द्वेष** (मोहो) **मोह है** (ते) **वे** (जीवस्स दु) **जीव के ही** (अणण्णपरिणामा) **अनन्य परिणाम है** (एदेण कारणेण दु) **इस कारण से ही** (रागादी) **राग आदि** (सद्दादिसु) **शब्द आदि में** (णत्थि) **नहीं है।**

अर्थ – राग, द्वेष, मोह वे जीव के अनन्य परिणाम है। इसी कारण राग आदि (परिणाम) शब्द आदि मे नही है।

परद्रव्य जीव में रागादि उत्पन्न नहीं करता—

अण्णदवियेण अण्णद वियस्स णो कीरदे गुणुप्पादो ।
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जते सहावेण ।। १०-६५-३७२

सान्वय अर्थ — (अण्णदवियेण) अन्य द्रव्य के द्वारा (अण्णदवियस्स) अन्य द्रव्य के (गुणुप्पादो) गुणो की उत्पत्ति (णो कीरदे) नहीं की जा सकती (तम्हा दु) इसलिए (सव्वदव्वा) सब द्रव्य (सहावेण) अपने-अपने स्वभाव से (उप्पज्जते) उत्पन्न होते है।

अर्थ — अन्य द्रव्य के द्वारा अन्य द्रव्य के गुणो की उत्पत्ति नही की जा सकती, इसलिए (यही कारण है कि) सब द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते है।

पुद्गल शब्द को सुनकर रोष-तोष करना अज्ञान है–

णिंदिद संथुद वयणाणि पोंग्गला परिणमंति वहुगाणि ।
ताणि सुणिदूण रूसदि तूसदि य पुणो अहं भणिदो ।। १०-६६-३७३

पोंग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणद तस्स जदि गुणो अण्णो ।
तम्हा ण तुम भणिदो किंचि वि किं रूससि अवुद्धो ।। १०-६७-३७४

मान्वय अर्थ – (पोंग्गला) पुद्गल (वहुगाणि) अनेक प्रकार के (णिंदिद मथुद वयणाणि) निन्दा और स्तुति के वचनो के रूप में (परिणमंति) परिणमित होते है (ताणि) उन वचनो को (सुणिदूण) सुनकर (पुणो) फिर (अहं भणिदो) मुझको कहा है–यह मानकर (रूसदि तूसदि य) रुष्ट और तुष्ट होता है (पोंग्गलदव्व) पुद्गल-द्रव्य (सद्दत्तपरिणद) शब्दरूप परिणमित हुआ है (तस्स गुणो) उसका गुण (जदि) यदि (अण्णो) तुझसे अन्य है (तम्हा) तो फिर (अवुद्धो) हे अज्ञानी (तुम) तुझको (किंचि वि) कुछ भी (ण भणिदो) नहीं कहा है–फिर (किं रूससि) तू क्यो रुष्ट होता है ?

अर्थ–पुद्गल अनेक प्रकार के निंदा और स्तुति के वचनो के रूप मे परिणमित होते है । उन वचनो को सुनकर 'मुझको कहा है' यह मानकर तू रुष्ट और तुष्ट होता है ।

पुद्गलद्रव्य शब्दरूप परिणमित हुआ है । उसका गुण यदि तुझसे अन्य है, तो फिर हे अज्ञानी ! तुझको कुछ भी नही कहा है, फिर तू क्यो रुष्ट होता है ?

आत्मा अपने स्वरूप से शब्द को सुनता है–

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु म ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं सोद विसय मागद सद्द ।। १०-६८-३७५

सान्वय अर्थ – (असुहो सुहो व) अशुभ या शुभ (सद्दो) शब्द (त) तुझे (णिण भणदि) यह नहीं कहा है कि (म सुणसु) तू मुझको सुन (सो चेव) और वह आत्मा भी (सोदविसयमागद) श्रोत्र इन्द्रिय के विषय में आये हुए (सद्द) शब्द को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नहीं जाता।

अर्थ – अशुभ या शुभ शब्द तुझे नही कहता है कि 'तू मुझ को सुन' । वह आत्मा भी श्रोत्र इन्द्रिय के विषय मे आये हुए शब्द को ग्रहण करने के लिए नही जाता ।

आत्मा अपने स्वरूप में रूप को देखता है—

असुह सुह व रूव ण तं भणदि पेच्छ म ति सोचेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रूवं ।। १०-६९-३७६

सान्वय अर्थ — (असुह सुह व) अशुभ या शुभ (रूव) रूप (त) तुझको (ति ण भणदि) यह नहीं कहता कि (म पेच्छ) तू मुझको देख (सो चेव) और आत्मा भी (चक्खुविसयमागद) चक्षु इन्द्रिय के विषय में आये हुए (रूव) रूप को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नहीं जाता ।

अर्थ — अशुभ या शुभ रूप तुझको यह नहीं कहता कि 'तू मुझको देख' और आत्मा भी चक्षु इन्द्रिय के विषय में आये हुए रूप को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता ।

आत्मा अपने स्वरूप से गन्ध को संघता है—

असुहो सुहो व गंधो ण त भणदि जिग्घ म ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदु घाणविसयमागद गंध ।। १०-७०-३७७

सान्वय अर्थ—(असुहो सुहो व) अशुभ या शुभ (गधो) गन्ध (त) तुझे (ति ण भणदि) यह नहीं कहता कि (म) मुझे (जिग्घ) तू सूंघ (सो चेव) और आत्मा भी (घाणविसयमागद) घ्राणेन्द्रिय के विषय में आये हुए (गध) गन्ध को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नहीं जाता ।

अर्थ— अशुभ या शुभ गन्ध तुझको यह नही कहता कि 'तू मुझे सूंघ' और आत्मा भी घ्राणेन्द्रिय के विषय मे आये हुए गन्ध को ग्रहण करने के लिए नही जाता ।

आत्मा अपने स्वरूप से रस को चखता है–

असुहो सुहो व रसो ण त भणदि रसय म ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागद तु रस ।। १०-७१-३७८

सान्वय अर्थ – (असुहो सुहो व) **अशुभ या शुभ** (रसो) **रस** (त) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** (म) **मुझे** (रसय) **तू चख** (सो चेव) **और आत्मा भी** (रसणविसयमागद तु रस) **रसना इन्द्रिय के विषय में आये हुए रस को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता ।**

अर्थ – अशुभ या शुभ रस तुझे यह नही कहता कि तू मुझे चख और आत्मा भी रसना इन्द्रिय के विषय मे आये हुए रस को ग्रहण करने के लिए नही जाता ।

आत्मा अपने स्वरूप से स्पर्श करता है—

असुहो सुहो व फासो ण तं भणदि फास म ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदु कायविसयमागदं फास ।। १०-७२-३७९

सान्वय अर्थ — (असुहो मुहो व) **अशुभ या शुभ** (फासो) **स्पर्श** (त) **तुझे** (ति ण भणदि) **यह नहीं कहता कि** (म) **मुझे** (फास) **तू स्पर्श कर** (मो चेव) **और आत्मा भी** (कायविसयमागद) **स्पर्शन इन्द्रिय के विषय में आये हुए** (फास) **स्पर्श को** (विणिग्गहिदु) **ग्रहण करने के लिए** (ण य एदि) **नहीं जाता ।**

अर्थ — अशुभ या शुभ स्पर्श मुझे यह नही कहता कि 'तू मुझे स्पर्श कर' और आत्मा भी स्पर्शन इन्द्रिय के विषय मे आये हुए स्पर्श को ग्रहण करने के लिए नही जाता ।

आत्मा अपने स्वरूप से गुण को जानता है—

असुहो सुहो व गुणो ण तं भणदि बुज्झ म त्ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं । १०-७३-३८०

सान्वय अर्थ — (असुहो सुहो व) अशुभ या शुभ (गुणो) गुण (तं) तुझे (त्ति ण भणदि) यह नहीं कहता कि (म) मुझको (बुज्झ) तू जान (सो चेव) और आत्मा भी (बुद्धिविसयमागदं तु गुणं) बुद्धि के विषय में आये हुए गुण को (विणिग्गहिदुं) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नहीं जाता।

अर्थ — अशुभ या शुभ गुण तुझे यह नहीं कहता कि 'तू मुझे जान' और आत्मा भी बुद्धि के विषय मे आये हुए गुण को ग्रहण करने के लिए नहीं जाता।

आत्मा अपने स्वरूप मे द्रव्य को जानता है—

असुह सुह व दव्व ण त भणदि वुज्झ म ति सो चेव ।
ण य एदि विणिग्गहिदु वुद्धिविसयमागद दव्व ।। १०-७४-३८१

सान्वय अर्थ – (असुह सुह व) अशुभ या शुभ (दव्व) द्रव्य (त) तुझे (ति ण भणदि) यह नहीं कहता (म) मुझे (वुज्झ) तू जान (सो चेव) और आत्मा भी (वुद्धिविसयमागद) बुद्धि के विषय में आये हुए (दव्व) द्रव्य को (विणिग्गहिदु) ग्रहण करने के लिए (ण य एदि) नहीं जाता ।

अर्थ – अशुभ या शुभ द्रव्य तुझे यह नही कहता कि तू मुझे जान' और आत्मा भी बुद्धि के विषय मे आये हुए द्रव्य को ग्रहण करने के लिए नही जाता ।

पर मे स्व बुद्धि का परिणाम–

एव तु जाणिदूण य उवसम णेव गच्छदे मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सय च बुद्धि सिवमपत्तो ।। १०-७५-३८२

मान्वय अर्थ – (एव तु) इस प्रकार (जाणिदूण य) जानकर भी (मूढो) मूढ जीव (उवसम) उपशम-शान्ति को (णेव गच्छदे) प्राप्त नहीं होता (य) और (परस्स) पर के (णिग्गहमणा) ग्रहण करने का मन करता है (सय च) उसे स्वय (सिव बुद्धि) कल्याणकारी बुद्धि-सम्यग्ज्ञान (अपत्तो) प्राप्त नहीं हुई ।

अर्थ – इस प्रकार (शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, परगुण और द्रव्य को) जानकर भी मूढजीव उपशम (शान्ति) को प्राप्त नही होता । वह पर के ग्रहण करने का मन करता है और स्वय उसे कल्याणकारी बुद्धि (सम्यग्ज्ञान) की प्राप्ति नही हुई ।

निश्चय प्रतिक्रमण का स्वरूप—

कम्म ज पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थर विसेस ।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमण ।। १०-७६-३८३

सान्वय अर्थ—(पुव्वकय) **पूर्व में किये हुए** (अणेयवित्थर विसेम) **अनेक विस्तार वाले** (ज) **जो** (सुहासुह) **शुभ और अशुभ** (कम्म) **कर्म हैं** (तत्तो) **उनसे** (जो तु) **जो जीव** (अप्पय) **अपने को** (णियत्तदे) **दूर कर लेता है** (सो) **वह जीव ही** (पडिक्कमण) **प्रतिक्रमण है ।**

अर्थ—पूर्व मे किये हुए (मूलोत्तर प्रकृति रूप से) अनेक विस्तार वाले जो शुभ और अशुभ कर्म हैं, उनमे जो जीव अपने को दूर कर लेता है, वह जीव ही प्रतिक्रमण है ।

निश्चय प्रत्याख्यान का स्वरूप--

कम्म ज सुहमसुह जम्हि य भावम्हि बज्झदि भविस्स ।
तत्तो णियत्तदे जो सो पचखाण हवदि चेदा ।। १०-७७-३८४

सान्वय अर्थ – (य) और (भविस्स) भविष्य काल में (ज) जो (सुहमसुह) शुभाशुभ (कम्म) कर्म (जम्हि भावम्हि) जिस भाव के होने पर (बज्झदि) बँधता है (तत्तो) उस भाव से (जो चेदा) जो आत्मा (णियत्तदे) निवृत्त होता है (सो) वह आत्मा (पचखाण) प्रत्याख्यान (हवदि) होता है।

अर्थ – और भविष्यकाल मे जो शुभाशुभ कर्म जिस भाव के होने पर बँधता है, उस भाव मे जो आत्मा निवृत्त होता है, वह आत्मा प्रत्याख्यान होता है।

निश्चय आलोचना का स्वरूप--

ज सुहमसुहमुदिण्ण सपडि य अणेयवित्थरविसेस ।
तं दोसं जो चेददि सो खलु आलोयण चेदा ।। १०-७८-३८५

सान्वय अर्थ -- (सपडि य) वर्तमान काल में (उदिण्ण) उदय में आये हुए (ज अणेयवित्थरविसेस) अनेक विस्तार वाला (सुहमसुह) शुभाशुभ कर्म है (तदोस) उस दोष को (जो चेदा) जो आत्मा (चेददि) अनुभव करता है (सो) वह आत्मा (खलु) वास्तव में (आलोयण) आलोचना है ।

अर्थ -- वर्तमान काल मे उदय मे आये हुए (मूलोत्तर प्रकृति के रूप मे) अनेक विस्तार वाले जो कर्म है, उस दोप को जो जीव (भेदरूप) अनुभव करता है, वह जीव वास्तव मे आलोचना है ।

निश्चय चारित्र का स्वरूप–

णिच्च पच्चक्खाण कुव्वदि णिच्च पि जो पडिक्कमदि ।
णिच्च आलोचेयदि सो हु चरित्त हवदि चेदा ।। १०-७९-३८६

सान्वय अर्थ– (जो) **जो** (चेदा) **आत्मा** (णिच्च) **हमेशा** (पच्चक्खाण) **प्रत्याख्यान** (कुव्वदि) **करता है** (णिच्च पि) **नित्य ही जो** (पडिक्कमदि) **प्रतिक्रमण करता है** (णिच्च) **नित्य ही** (आलोचेयदि) **आलोचना करता है** (सो) **वह आत्मा** (हु) **निश्चय से** (चरित्त) **चारित्र** (हवदि) **है ।**

अर्थ –जो आत्मा नित्य प्रत्याख्यान करता है, नित्य ही जो प्रतिक्रमण करता है, जो नित्य आलोचना करता है, वह आत्मा निश्चय से चारित्र है ।

अज्ञानचेतना ही कर्म-बंध का कारण है--

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं जो दु कुणदि कम्मफलं ।
सो तं पुणो वि बंधदि वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।। १०-८०-३८७
वेदंतो कम्मफलं मये कदं जो दु मुणदि कम्मफलं ।
सो तं पुणो वि बंधदि वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।। १०-८१-३८८
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा ।
सो तं पुणो वि बंधदि वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ।। १०-८२-३८९

सान्वय अर्थ -- (कम्मफलं) **कर्म के फल का** (वेदंतो) **वेदन करता हुआ** (जो दु) **जो आत्मा** (कम्मफलं) **कर्म के फल को** (अप्पाणं कुणदि) **निजरूप करता है** (सो) **वह** (दुक्खस्स वीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं तं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है** (कम्मफलं) **कर्म के फल का** (वेदंतो) **वेदन करता हुआ** (जो दु) **जो आत्मा** (कम्मफलं) **कर्म का फल** (मये कदं) **मैंने किया ऐसा** (मुणदि) **मानता है** (सो) **वह** (दुक्खस्स वीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं तं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है** (कम्मफलं) **कर्म के फल का** (वेदंतो) **वेदन करता हुआ** (जो चेदा) **जो आत्मा** (सुहिदो दुहिदो य) **सुखी और दुखी** (हवदि) **होता है** (सो) **वह** (दुक्खस्स वीयं) **दुःख के बीज** (अट्ठविहं तं) **आठ प्रकार के कर्म को** (पुणो वि) **फिर भी** (बंधदि) **बाँधता है ।**

अर्थ -- कर्म के फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा कर्म के फल को निज-रूप करता है (मानता है) वह दुःख के बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है ।

कर्म के फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा 'कर्म का फल मैंने किया' ऐसा मानता है, वह दुःख के बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है ।

कर्म के फल का वेदन करता हुआ जो आत्मा सुखी और दुखी होता है, वह दुःख के बीज आठ प्रकार के कर्म को फिर भी बाँधता है ।

शास्त्र ज्ञान से भिन्न है–

सत्थ णाण ण हवदि जम्हा सत्थ ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाणं अण्ण सत्थ जिणा विंति ।। १०-८३-३९०

सान्वय अर्थ – (सत्थ) शास्त्र (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (सत्थ) शास्त्र (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (सत्थ) शास्त्र (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ नहीं जानता इसलिए ज्ञान अन्य है, शास्त्र अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

शब्द ज्ञान से भिन्न है—

सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण सद्द जिणा विति ।। १०-८४-३९१

मान्वय अर्थ—(सद्दो) शब्द (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नही है (जम्हा) क्योकि (सद्दो) शब्द (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (सद्द) शब्द (अण्ण) अन्य है (जिणा) जिनेन्द्रदेव—ऐसा (विति) कहते है।

अर्थ—शब्द ज्ञान नही है क्योकि शब्द कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, शब्द अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते है ।

रूप ज्ञान से भिन्न है–

रूव णाणं ण हवदि जम्हा रूव ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण रूव जिणा विति ।। १०-८५-३९२

सान्वय अर्थ – (रूव) रूप (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (रूव) रूप (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (रूव) रूप (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विति) कहते हैं।

अर्थ – रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ नहीं जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है रूप अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

वर्ण ज्ञान से भिन्न है–

वण्णो णाणं ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ।। १०-८६-३९३

सान्वय अर्थ – (वण्णो) वर्ण (णाणं) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (वण्णो) वर्ण (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाणं) ज्ञान (अण्णं) अन्य है (वण्णं) वर्ण (अण्णं) अन्य है (जिणा) ऐसा जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं।

अर्थ – वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ नहीं जानता; इसलिए ज्ञान अन्य है, वर्ण अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

गन्ध ज्ञान से भिन्न है--

गधो णाण ण हवदि जम्हा गधो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण गध जिणा विंति ।। १०-८७-३९४

सान्वय अर्थ – (गधो) गन्ध (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (गधो) गन्ध (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (गध) गन्ध (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – गन्ध ज्ञान नही है, क्योकि गन्ध कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, गन्ध अन्य है ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

रस ज्ञान से भिन्न है—

ण रसो दु होदि णाण जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण रस च अण्ण जिणा विंति ।। १०-८८-३९५

सान्वय अर्थ – (रसो दु) रस (णाण) ज्ञान (ण होदि) नहीं है (जम्हा) क्योकि (रसो दु) रस तो (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता है (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (च) और (रस) रस (अण्ण)अन्य है—ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – रस ज्ञान नही है, क्योकि रस तो कुछ नही जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है और रस अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

स्पर्श ज्ञान से भिन्न है–

फासो णाण ण हवदि जम्हा फासो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण फास जिणा विंति ।। १०-८९-३९६

सान्वय अर्थ – (फासो) स्पर्श (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (फासो) स्पर्श (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (फास) स्पर्श (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – स्पर्श ज्ञान नहीं है, क्योंकि स्पर्श कुछ नहीं जानता, इसलिए ज्ञान अन्य है, स्पर्श अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

कर्म ज्ञान से भिन्न है–

कम्म णाण ण हवदि जम्हा कम्म ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण कम्म जिणा विंति ।। १०-९०-३९७

सान्वय अर्थ – (कम्म) कर्म (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कम्म) कर्म (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (कम्म) कर्म (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – कर्म ज्ञान नहीं है, क्योंकि कर्म कुछ नहीं जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है, कर्म अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

धर्मद्रव्य ज्ञान से भिन्न है–

धम्मो णाण ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण धम्म जिणा विंति ।। १०-९१-३९८

सान्वय अर्थ – (धम्मो) धर्मद्रव्य (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (धम्मो) धर्मद्रव्य (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (धम्म) धर्मद्रव्य (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्र-देव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – धर्मद्रव्य ज्ञान नहीं है, क्योंकि धर्मद्रव्य कुछ नहीं जानता है, इस-लिए ज्ञान अन्य है, धर्मद्रव्य अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

अधर्मद्रव्य ज्ञान से भिन्न है–

णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाधम्मो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्णमधम्म जिणा विंति ।। १०-९२-३९९

सान्वय अर्थ – (अधम्मो) अधर्म द्रव्य (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं होता (जम्हा) क्योंकि (अधम्मो) अधर्म द्रव्य (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता है (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (अधम्म) अधर्म द्रव्य (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते हैं ।

अर्थ – अधर्म द्रव्य ज्ञान नहीं है, क्योंकि अधर्म द्रव्य कुछ नहीं जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है, अधर्म द्रव्य अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं ।

काल द्रव्य ज्ञान से भिन्न है—

कालो णाण ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि ।
तम्हा अण्ण णाण अण्ण काल जिणा विंति ।। १०-९३-४००

सान्वय अर्थ — (कालो) कालद्रव्य (णाण) ज्ञान (ण हवदि) नहीं है (जम्हा) क्योंकि (कालो) काल द्रव्य (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता है (तम्हा) इसलिए (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है (काल) काल द्रव्य (अण्ण) अन्य है-ऐसा (जिणा) जिनेन्द्र-देव (विंति) कहते हैं।

अर्थ — काल द्रव्य ज्ञान नहीं है, क्योंकि काल द्रव्य कुछ नहीं जानता है, इसलिए ज्ञान अन्य है काल द्रव्य अन्य है ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

आकाश द्रव्य ज्ञान से भिन्न है–

आयास पि ण णाण जम्हायास ण याणदे किंचि ।
तम्हायास अण्ण अण्ण णाण जिणा विंति ।। १०-९४-४०१

सान्वय अर्थ – (आयाम पि) आकाश भी (णाण ण) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (आयास) आकाश द्रव्य (किंचि) कुछ (ण याणदे) नहीं जानता है (तम्हा) इसलिए (आयास) आकाश द्रव्य (अण्ण) अन्य है (णाण) ज्ञान (अण्ण) अन्य है–ऐसा (जिणा) जिनेन्द्रदेव (विंति) कहते है ।

अर्थ – आकाश द्रव्य भी ज्ञान नही है, क्योंकि आकाश द्रव्य कुछ नही जानता है, इसलिए आकाश द्रव्य अन्य है, ज्ञान अन्य है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

अध्यवसान ज्ञान नहीं है–

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा ।
तम्हा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ।। १०-९५-४०२

सान्वय अर्थ – (अज्झवसाणं) अध्यवसान (णाणं ण) ज्ञान नहीं है (जम्हा) क्योंकि (अज्झवसाणं) अध्यवसान (अचेदणं) अचेतन है (तम्हा) इसलिए (णाणं) ज्ञान (अण्णं) अन्य है (तहा) तथा (अज्झवसाणं) अध्यवसान (अण्णं) अन्य है ।

अर्थ – अध्यवसान ज्ञान नहीं है, क्योंकि अध्यवसान अचेतन है, इसलिए ज्ञान अन्य है तथा अध्यवसान अन्य है ।

ज्ञान ही दीक्षा है–

जम्हा जाणदि णिच्च तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेदव्वं ।। १०-९६-४०३

णाण सम्मादिट्ठि दु सजम सुत्तमग पुव्वगदं ।
धम्माधम्म च तहा पव्वज्ज अब्भुवेंत्ति बुहा ।। १०-९७-४०४

सान्वय अर्थ–(जम्हा) क्योकि–जीव (णिच्च) सदा (जाणदि) जानता है (तम्हा) इसलिए (जाणगो जीवो दु) ज्ञायक जीव (णाणी) ज्ञानी है (च) और (णाण) ज्ञान (जाणयादो) ज्ञायक से (अव्वदिरित्त) अभिन्न है–ऐसा (मुणेदव्व) जानना चाहिये (बुहा) ज्ञानीजन–गणधरदेव (णाण दु) ज्ञान को ही (सम्मादिट्ठि) सम्यग्दृष्टि (सजम) सयम (अगपुव्वगद सुत्त) अगपूर्वगत सूत्र (धम्माधम्म च) धर्म और अधर्म (तहा) तथा (पव्वज्ज) दीक्षा (अब्भुवेंत्ति) मानते हैं ।

अर्थ–क्यो कि जीव सदा जानता है, इसलिए ज्ञायक जीव ज्ञानी है और ज्ञान ज्ञायक से अभिन्न है, ऐसा जानना चाहिये । ज्ञानीजन (गणधरदेव) ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, सयम, अगपूर्वगत सूत्र, धर्म और अधर्म तथा दीक्षा मानते हैं ।

आत्मा अनाहारक है–

अत्ता जस्स अमुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पोंग्गलमओ दु ।। १०-९८-४०५

ण वि सक्कदि घेत्तुं ज ण विमोत्तु चेव ज पर दव्वं ।
सो को वि य तस्स गुणो पाओग्गिय विस्ससो वा वि ।। १०-९९-४०६

तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गिण्हदे किंचि ।
णेव विमुञ्चदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं ।। १०-१००-४०७

सान्वय अर्थ – (एव) इस प्रकार (जस्स) जिसकी (अत्ता) आत्मा (अमुत्तो) अमूर्तिक है (सो हु) वह निश्चय ही (आहारगो) आहारक (ण हवदि) नहीं है (खलु) वास्तव में (आहारो) आहार (मुत्तो) मूर्तिक है (जम्हा) क्योकि (सो दु) वह आहार (पोंग्गल-मओ) पुद्गलमय है (तम्स य) उस आत्मा का (सो को वि) वह कोई (पाओग्गिय विम्समो वा वि) प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक (गुणो) गुण है (ज) कि (ज पर दव्व) पर द्रव्य को–वह (ण वि घेत्तु सक्कदि) न ग्रहण कर सकता है (ण चेव विमोत्तु) न छोड़ सकता है (तम्हा दु) इस कारण–अनाहारक होने के कारण (जो विसुद्धो चेदा) जो विशुद्ध आत्मा है (सो) वह (जीवाजीवाण दव्वाण) जीव-अजीव परद्रव्यो में (किंचि वि) कुछ भी (णेव गिण्हदे) न ही ग्रहण करता है (किंचि वि) और कुछ भी (णेव विमुञ्चदि) न ही छोड़ता है ।

अर्थ – इस प्रकार जिसकी आत्मा अमूर्तिक है, वह निश्चय ही आहारक नही है। वास्तव मे आहार मूर्तिक है क्योकि आहार पुद्गलमय है । उस आत्मा का वह कोई प्रायोगिक अथवा वैस्रसिक गुण है कि वह परद्रव्य को न ग्रहण कर सकता है, न छोड सकता है, अत· (अनाहारक होने के कारण) जो विशुद्ध आत्मा है, वह जीव-अजीव परद्रव्यो मे न तो कुछ ग्रहण ही करता है और न कुछ छोड़ता ही है।

वाह्यलिग मोक्ष का मार्ग नही है–

पासंडिय लिंगाणि य गिहिलिंगाणि य वहुप्पयाराणि ।
घेत्तुं वदति मूढा लिगमिण मोंक्खमग्गो त्ति ।। १०-१०१-४०८

ण दु होदि मोंक्खमग्गो लिग ज देहणिम्ममा अरिहा ।
लिग मुइत्तु दसणणाणचरित्ताणि सेवते ।। १०-१०२-४०९

सान्वय अर्थ – (वहुप्पयाराणि) अनेक प्रकार के (पासडिय लिंगाणि य) साधुओ के वेष (य) और (गिहिलिंगाणि) गृहस्थ के वेष (घेत्तु) ग्रहण करके (मूढा) अज्ञानीजन (त्ति) यह (वदति) कहते है कि (इण लिग) यह वेष ही (मोंक्खमग्गो) मोक्ष का मार्ग है (दु) किन्तु (लिग) द्रव्यलिग (मोंक्खमग्गो) मोक्ष का मार्ग (ण होदि) नहीं है (ज) क्योकि (अरिहा) अर्हन्तदेव (देह णिम्ममा) देह से ममत्वहीन हुए (लिग मुइत्तु) बाह्य लिग को छोड़कर (दसणणाणचरित्ताणि) दर्शन, ज्ञान, चारित्र का (सेवत्ते) सेवन करते है।

अर्थ – अनेक प्रकार के साधु-वेप और गृहस्थ-वेप धारण करके अज्ञानी जन यह कहते हैं कि वेप ही मोक्ष का मार्ग है, किन्तु द्रव्यलिंग मोक्ष का मार्ग नही हैं, क्योकि अर्हन्तदेव देह मे ममत्वहीन हुए (वाह्य) लिंग को छोडकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करते हैं।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है—

ण वि एस मोंक्खमग्गो पासडिय गिहिमयाणि लिंगाणि ।
दसणणाणचरित्ताणि मोंक्खमग्ग जिणा विंति ।। १०-१०३-४१०

तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारियेहि वा गहिदे ।
दसणणाणचरित्ते अप्पाण जुञ्ज मोंक्खपहे ।। १०-१०४-४११

सान्वय अर्थ – (पासडिय गिहिमयाणि लिंगाणि) साधु और गृहस्थ के लिंग (एस वि) यह भी (मोंक्खमग्गो ण) मोक्ष-मार्ग नहीं है (दसण णाणचरित्ताणि) दर्शन, ज्ञान और चारित्र (मोंक्खमग्ग) मोक्ष-मार्ग है (जिणा) जिनेन्द्रदेव—ऐसा (विंति) कहते है (तम्हा) इसलिए (सागारणगारियेहि वा) सागार-गृहस्थ अथवा अनगार-मुनियो द्वारा (गहिदे) ग्रहण किये हुए (लिंगे) लिंगो को (जहित्तु) छोड़कर (अप्पाण) अपनी आत्मा को (दसणणाणचरित्ते) दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरूप (मोंक्खपहे) मोक्ष-मार्ग में (जुञ्ज) लगाओ ।

अर्थ – साधु और गृहस्थ के लिंग—यह भी मोक्ष-मार्ग नही है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्ष-मार्ग है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं, इसलिए गृहस्थ और साधुओ द्वारा ग्रहण किये हुए लिंगो को छोडकर अपनी आत्मा को दर्शन, ज्ञान और चारित्रस्वरूप मोक्ष-मार्ग मे लगाओ ।

मोक्षमार्ग मे विहार कर–

मोॅक्खपहे अप्पाण ठवेहि चेदयहि झाहि तं चेव ।
तत्थेव बिहर णिच्च मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥ १०-१०५-४१२

सान्वय अर्थ – (मोॅक्खपहं) **मोक्ष-पथ में** (अप्पाण) **अपने आत्मा को** (ठवेहि) **तू स्थापित कर** (चेदयहि) **उसी का अनुभव कर** (त चेव) **और उसी का** (झाहि) **ध्यान कर** (तत्थेव) **वहीं पर** (णिच्च) **सदा** (विहर) **विहार कर** (अण्णदव्वेमु) **अन्य द्रव्यो में** (मा विहरसु) **बिहार मत कर ।**

अर्थ – (हे भव्य) मोक्ष-पथ मे अपने आत्मा को तू स्थापित कर, उसी का अनुभव कर और उसी का ध्यान कर, वही पर सदा विहार कर, अन्य द्रव्यो मे विहार मत कर ।

लिग के मोही समय-सार को नही जानते--

पासडिय लिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वति जे ममत्त तेहि ण णादं समयसार ॥ १०-१०६-४१३

सान्वय अर्थ -- (जे) **जो लोग** (वहुप्पयारेसु) **बहुत प्रकार के** (पासडिय लिंगेसु व) **साधु-लिगो में** (गिहिलिंगेसु व) **अथवा गृहस्थ-लिगो में** (ममत्त) **ममत्व** (कुव्वति) **करते है** (तेहि) **उन्होने** (समयसार) **समयसार-शुद्धात्म स्वरूप को** (ण णाद) **नहीं जाना ।**

अर्थ -- जो लोग वहुत प्रकार के साधु-लिगो मे अथवा गृहस्थ-लिगो मे ममत्व करते हैं, उन्होंने समय-सार को (शुद्धात्म स्वरूप को) नही जाना ।

लिग के सम्बन्ध मे दोनो नयो का मत--

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोॅक्खपहे ।
णिच्छयणओ दु णेच्छदि मोॅक्खपहे सव्वलिंगाणि ।। १०-१०७-४१४

सान्वय अर्थ – (ववहारिओ णओ) व्यवहार नय (दोण्णि वि) दोनो ही (लिगाणि) लिगो को (मोॅक्खपहे) मोक्ष का मार्ग (भणदि) कहता है (पुण) पुन· और (णिच्छयणओ दु) निश्चय नय तो (सव्व लिगाणि) समस्त लिगो को (मोॅक्खपहे) मोक्ष मार्ग में (णेच्छदि) इष्ट नहीं मानता ।

अर्थ – व्यवहार नय दोनो ही लिगो को मोक्ष का मार्ग कहता है और निश्चय नय तो समस्त लिगो को मोक्ष-मार्ग मे इष्ट नही मानता ।

उपसहार–

जो समय पाहुडमिण पढिदूण य अत्थतच्चदो णादुं ।
अत्थे ठाहिदि चेदा सो होहिदि उत्तमं सोंक्ख ।। १०-१०८-४१५

सान्वय अर्थ – (जो चेदा) जो आत्मा (इण समयपाहुड) इस समय प्राभृत को (पढिदूण) पढ़कर (य) और (अत्थतच्चदो) उसे अर्थ और तत्त्व से (णादु) जानकर (अत्थे) अर्थभूत शुद्धात्मा में (ठाहिदि) ठहरेगा (सो) वह (उत्तम सोंक्ख) उत्तम सौख्यस्वरूप (होहिदि) हो जाएगा।

अन्त में आचार्य कुन्दकुन्द उपसहार करते हुए समयपाहुड ग्रन्थ का माहात्म्य बतलाते हैं––

अर्थ – जो भव्यात्मा इस समय प्राभृत को पढकर और इसे अर्थ और तत्त्व से जानकर अर्थभूत शुद्धात्मा मे ठहरेगा, वह उत्तम सौख्यस्वरूप हो जाएगा।

इदि दहमो सव्वविसुद्धणाणाधियारो समत्तो

इदि सिरिकुन्दकुन्दाइरिय पणीद समयपाहुड

गाहानुक्कमणिका

आ

गाथा-क्रमांक

गाथा-क्रमांक

गाथा-क्रमांक

द

ध

प

गाथा-क्रमांक

□□□